Chapter-5

पंचम अध्याय

कलापक्ष

अनुभूति के कलात्मक प्रकाशन में प्रयुक्त सुनियोजित शब्द समूह को कलापक्ष कहते हैं । इस शब्दावली में भाव के सम्यक् सम्प्रेषण के लिए जिन उपादानों को ग्रहण किया जाता है, वे कलापक्ष के तत्व कहलाते हैं । इस कलापक्ष में भाषागत उपादानों को अनुभूति के अनुरूप तराशा और संयोजित किया जाता है । उसके मूलतः दो रूप हैं - चयन और संयोजन । अनुभूति की नवीनता भाषागत उपकरणों के नवीन संयोजन से अपने अनुरूप अभिव्यक्ति का सांचा तलाश कर लेती है । कला में प्रतिभा और प्रयत्न का सहज सामंजस्य रहता है । काव्य-कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प-तत्व कहे जाते हैं ।"[1] काव्य-रचना को मूर्त रूप प्रदान करने वाली इन प्रमुखताओं या तत्वों के स्वतंत्र स्वरूप को ही "कला-पक्ष" कहते हैं ।

इस कलागत तत्वों के अन्तर्गत हम बिम्ब, प्रतीक, छन्द, अलंकार, भाषा, लय, रस और तुक इत्यादि को मान सकते हैं ।

बिम्ब विधान : नयी भंगिमा

आधुनिक काव्य में बिम्ब विधान की भंगिमा पूर्ववर्ती एवं परम्परित बिम्बों की अपेक्षा नयी है, क्योंकि वह पूर्ववर्ती संदर्भों से पृथक है । साथ ही उसकी जमीन ही नयी है । बिम्ब शब्द अंग्रेजी के " इमेज "का हिन्दी रूपान्तर है । बिम्ब शब्द के अर्थ विश्लेषण से अनेक अर्थ प्रकाश में आते हैं । उसके पर्याय शब्दों में छाया, प्रतिच्छाया, अनुकृति, अर्थ चित्र, मानस-चित्र, प्रति-बिम्ब आदि की गणना होती है । बिम्ब को किसी पदार्थ का मानसिक प्रतिबिम्ब[2], किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति[3] किसी वस्तु की छाया, अनुकृति, सदृशता अथवा समानता[4], किसी वस्तु या व्यक्ति की

1- आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेयी - पृ० 19

2- बिम्बवाद, बिम्ब और आधुनिक हिन्दी कविता - डॉ० श्री भगवान तिवारी

3- शार्टर डिक्शनरी ऑफ इण्डिया

4- वेब्स्टर्स थर्ड न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी

प्रतिच्छाया अथवा प्रतिबिम्ब[1] अतीत की वस्तुओं एवं घटनाओं की मानस प्रतिमा[2] का समानार्थक कहा गया है । "इमेज" का हिन्दी रूपान्तर है "बिम्ब" जिसका शब्दार्थ – सूर्य, चन्द्र-मंडल, प्रतिबिम्बित, प्रतिच्छाया, प्रतिच्छवि, प्रतिबिम्बित अथवा प्रत्यंकित रूपचित्र है ।[3] अर्थात् "मूल पदार्थ" अथवा वस्तु की अनुपस्थिति में परोक्ष रूप से ऐन्द्रिय तत्वों के आधार पर उसका जो शब्द चित्र तैयार किया जाता है उसे बिम्ब कहते हैं ।

अन्य कई विद्वानों ने इसकी परिभाषा अलग-अलग प्रकार से दी है । साथ ही काव्य-बिम्ब एवं उसके स्वरूप को भी परिभाषित किया है । पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों में टी. ई. ह्यूम के मतानुसार "बिम्ब सिर्फ काव्य की सज्जात्मक उपकरण ही नहीं है, सहज स्फूर्त अभिव्यक्ति की भाषा का सार भी है ।[4] सी. डी. लुइस के मत से काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है ।[5]

डॉ० नगेन्द्र के मत से "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस दृष्टि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है ।[6]
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि "मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान अथवा कल्पना विधान का बड़ा महत्व है । प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की, तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटनेवाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएं भी रहती है । बिम्ब शब्द इसी मानस-प्रतिमा का पर्याय है ।"[7]

---

1. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड-14 – पृ० 328
2. साहित्य कोश – सं० धीरेन्द्र वर्मा – पृ० 514
3. संस्कृत – इंगलिश डिक्शनरी – सं० मोनियर विलियम्स, ऑक्सफोर्ड क्लेरेण्डन प्रेस – पृ० 731
4. स्पेक्युलेशन्स – हार्बर्ट रीड – पृ० 135
5. स्पेक्युलेशन्स – हार्बर्ट रीड – पृ० 14
6. काव्य-बिम्ब – डॉ० नगेन्द्र – पृ० 5
7. हिन्दी साहित्य कोश – सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा – पृ० 514

अर्थात् काव्यगत बिम्ब वह शब्दचित्र है, जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है । सी.डी.लेविस ने तो बिम्ब को काव्य की आत्मा और कविता को विभिन्न बिम्बों का समूह कहा है ।[1] जबकि ब्रजनन्दनजी का मंतव्य है - काव्यात्मक बिम्ब किसी अर्धस्थित भावना से संपृक्त शब्दचित्र होता है, जिसमें ऐन्द्रिक गुण वर्तमान रहते हैं ।[2] स्टीफ के मतानुसार "साहित्य में बिम्ब का अर्थ कलाकार की उस क्षमता से है, जिसके आधार पर वह अतीत की घटनाओं और विषय वस्तु को रंग, ध्वनि, गति, आकार-प्रकार सहित देशकाल परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द-चित्रों में वर्णित कर देता है ।"[3] जबकि ह्यूम के मत से "बिम्ब मन की भाषा को व्यक्त करने का एक उपादान है, जो भावनात्मक रूप को प्रस्तुत करता है ।"[4] यही काव्य-बिम्ब का स्वरूप दृष्टिगत होता है । बिम्ब का काव्य में वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का है । वर्ड्सवर्थ के अनुसार "कविता मानव और प्रकृति का बिम्ब है ।"[5] हडसन के मतानुसार "कविता बिम्ब और भावना के माध्यम से जीवन की व्याख्या करती है ।"[6] ड्राइडन के अनुसार"बिम्ब स्वतः महान एवं कविता का जीवन है ।"[7] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "काव्य का कार्य है, कल्पना में बिम्ब {इमेज} या मूर्त भावना स्थापित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं ।"[8] डॉ० सुधा सक्सेना के शब्दों में "बिम्ब काव्य का प्रधान तत्व अवश्य रहा है । वस्तुतः वही एक ऐसा तत्व है जिसे देश, काल और जाति

---

1. दि पोयटिक इमेज, सी.डी.लेविस - पृ० 18
2. काव्यात्मक बिम्ब - ब्रजनन्दन प्रसाद अखौरी - पृ० 54
3. स्टीफेन जे. ब्राउन - वर्ल्ड ऑफ इमेजरी - पृ० 1-2
4. स्पेक्यूलेशन्स - हार्बर्ट रीड - पृ० 134
5. इंग्लिश क्रिटीकल एसे - वर्ड्सवर्थ - नाइन्टीन्थ सेन्चुरी पृ० 14
6. पोएट्री इज द इन्टरप्रीटेशन ऑफ लाइफ थ्रू इमेजिनेशन एंड एक्शन - शास्त्री समीक्षा - भाग - 1 - त्रिगुणायत द्वारा उद्धृत - पृ० 75
7. पोएटीक इमेज - सी डे लुईस - पृ० 18
8. रस मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल - पृ० 243

की सीमाओं से मुक्त काव्य का एकमात्र प्राणतत्व कहा जा सकता है ।"[1] डॉ० नगेन्द्र का विचार है, "बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इसलिए काव्य के संदर्भ में उसका मूल्य असंदिग्ध है, पर वह स्वतंत्र नहीं है - माध्यम ही है, प्राणतत्व नहीं है, काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है, प्राथमिक मूल्य नहीं है ।"[2] बिम्ब काव्य का साध्य भी है और साधन भी । साध्य के रूप में बिम्ब का सम्बन्ध काव्यात्मा से है और साधन के रूप में काव्य के रूप-विधान से । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रूप-विधान को काव्य के धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं । उनका कहना है - "काव्य में अर्थ-ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता । बिम्ब-ग्रहण अपेक्षित होता है । यह बिम्ब-ग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है ।"[3]

मेरी दृष्टि से बिम्ब वस्तुतः काव्य सम्प्रेषण की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होता है । वह दर्पण की भांति यथार्थ का बोध कराता है । साथ ही गहन और गूढ़ भावनाओं को स्थापित करके सहज बनाता है । वह कविता का ही नहीं अपितु दर्शन एवं मनोविज्ञान का भी एक तत्व है । काव्य-बिम्बों का वर्गीकरण करके उन्हें किसी सीमारेखा में बांधा नहीं जा सकता । क्योंकि काव्य की विकासात्मक-प्रक्रिया के साथ ही बिम्ब-प्रक्रिया में भी विकास होना स्वाभाविक बात है । अतः बिम्ब का कोई विशेष सुनिश्चित एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं हो सका है जो अपनी शाश्वत मौलिकता का दावा कर सकें । अतः हम यह कह सकते हैं कि उसका वर्गीकरण आज तक उलझा हुआ है और काव्य बिम्बों का वर्गीकरण भी बहुत वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत नहीं है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बिम्ब को रूपविधान के अन्तर्गत रखते हुए प्रत्यक्ष स्मृत और कल्पित तीन भेद किये हैं ।[4] जबकि कुमार विमल ने बिम्बों का वर्गीकरण करते हुए बिम्बों की कोटि बढ़ाने का ही उपक्रम किया है ।[5] किन्तु सर्वप्रथम

---

1. जायसी की बिम्ब योजना - पृ0 27
2. काव्य बिम्ब - डॉ0 नगेन्द्र - पृ0 62
3. रस-मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 252
4. रस-मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 326
5. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व - डॉ0 कुमार विमल - पृ0 215, 216 और 219

डॉ० नगेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण किया है । इन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के योग से [वर्ग - 1] दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य और रम्य [वर्ग - 2] लक्षित और उपलक्षित [वर्ग - 3] सरल और संश्लिष्ट [वर्ग - 4] खण्डित और समाकलित [वर्ग - 5] वस्तुपरक और स्वच्छन्द के रूप में बिम्ब का वर्गभेद किया है ।[1] डॉ० बाजपेयी ने दृश्य वस्तु, भाव, अलंकृत, शब्द, विकृत आदि छः भेद माने है ।[2] डॉ० हरिचरण शर्मा ने उनके वैशिष्ट्य, कार्यक्षमता एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि को आधार मानते हुए दृश्य अथवा वस्तु, मानस और संवेद्य [ऐन्द्रिय] के रूप में बिम्बों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है ।[3] आधुनिक कवि डॉ० केदारनाथसिंह ने नयी कविता के अन्तर्गत समकालीन यथार्थ से युक्त पारदर्शी, प्रतीकात्मक, शिशु और भाषा वैज्ञानिक बिम्ब की नयी सारणियों का भी संकेत किया है ।[4] जबकि डॉ० अवस्थी ने मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान के प्रभावस्वरूप ऐन्द्रिय, शब्द प्रधान, अर्थ प्रधान, मुक्त आसंग, दिवास्वप्न और साहचर्य को माना है ।[5] कुम्ब ने बिम्बको अलंकार मानते हुए संक्षिप्त और श्लथ दो भेद किये हैं[6]। लेविस के मंतव्य से बिम्बों की प्रभावात्मक और साहित्यिक उपयोगिता के आधार पर सजीव और खण्डित दो भेद किये हैं ।[7] फाग्सले ने मूर्त और अमूर्त दो प्रकार माना है ।[8]

यद्यपि बिम्बों के वर्गीकरण में विषय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि को विशेष रूप से आधार मानते हुए भी हमें जनवादी मूल्यों को बिम्बात्मक ढाँचे में स्पष्टतया

---

1. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 17
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में शिल्प - डॉ० कैलाश बाजपेयी - पृ० 81
3. नयी कविता का मूल्यांकन परम्परा और प्रगति की भूमिका पर - डॉ० हरिचरण शर्मा - पृ० 302
4. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान - डॉ० केदारनाथसिंह -
5. नयी कविता : रचना प्रक्रिया - डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी - पृ० 117
6. लिटरेचर एण्ड क्रिटिसिज्म - एच कुम्बे - पृ० 49
7. पर्थोपरि - सी.डी. लेविस - पृ० 90
8. दि इमेजरी ऑफ कीट्स एण्ड शैली - रिचर्ड हर्टर फाग्सले - पृ० 184

प्रस्तुत करने के लिए आधुनिक हिन्दी कविता के कवियों के बिम्बों के विश्लेषण को समझना होगा । उनका सम्पूर्ण वर्गीकरण निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :

(क) ऐन्द्रिय आधार पर

- चाक्षुष बिम्ब
- नाद बिम्ब
- स्पृश्य बिम्ब
- घ्राण बिम्ब
- आस्वाद्य बिम्ब

(ख) सर्जक कल्पना के आधार पर

- लक्षित बिम्ब
- उपलक्षित बिम्ब

(ग) बिम्बों के उपकरणों के सम्वेदन के आधार पर

- सरल बिम्ब
- संश्लिष्ट बिम्ब

(घ) वस्तुचित्रण और अलंकृति के आधार पर

- वस्तु प्रधान बिम्ब
  1) यथातथ्य
  2) व्यापार व्यंजक
- अलंकृत बिम्ब

(ङ) अन्य प्रकार के वर्गीकरण

- प्रतीकात्मक बिम्ब

(क) <u>ऐन्द्रिय बिम्ब</u>

ऐन्द्रिय बिम्बों का मौलिक आधार ऐन्द्रिय संवेदना होती है । इन्द्रिय संवेदना अनुभव पर निर्भर रहती है । ऐन्द्रिय बिम्बों से हमारी संवेदना अत्यन्त सहज ढंग से प्रभावित होती है । ऐसे बिम्बों की बोध सहजता में इन्द्रिय-गुणों

की अपेक्षा रहती है । ऐन्द्रिक गुणों के आधार पर ही इनके दृश्य, श्रव्य, घ्राण, स्पर्श और आस्वाद आदि बिम्ब रूप ठहरते हैं ।

1) चाक्षुष बिम्ब : दृश्य बिम्ब का सम्बन्ध आँख से होता है, परिणामतः यह बिम्ब अत्यन्त व्यापक और सहज ग्राह्य हो जाता है । इन बिम्बों के आकार होते हैं । डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में "इसका स्वरूप सबसे अधिक स्पष्ट होता है, क्योंकि उसके आयाम अधिक मूर्त होते हैं । यही कारण है कि ऐसे प्रत्येक अनुभव के लिए जिसमें किसी भी इन्द्रिय का सीधा सन्निकर्ष होता है, "प्रत्यक्ष" विशेषण का ही प्रयोग किया जाता है और जीवन तथा काव्य में बिम्बों का प्रयोग सर्वाधिक होता है... ।[1]

उदाहरण देखिए –

"देखे थे उसने, सुर-असुर
यक्ष किन्नर, देवाधिदेव
किन्तु नर के तप-तेज, वीर्य-विक्रम दर्शन का
यह उसका पहला अनुभव था ।"[2]

अथवा

"देख देख अलकों के बदराए छोर,
नाच उठा चुनरी पर छपा हुआ मोर ।[3]

उपर्युक्त दोनों ही बड़े ही उत्कृष्ट उदाहरण है ।

2) नाद बिम्ब : नाद - बिम्ब का सम्बन्ध कर्णेन्द्रिय से होता है । डॉ० नगेन्द्र के मंतव्य से "वर्ण-ध्वनि, छान्दस लय, तुकांत आदि के बिम्ब श्रव्य है : अनुप्रास, वृत्ति आदि से भी श्रव्य

---

1. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 9
2. प्रस्तोता - डॉ० अम्बाशंकर नागर - पृ० 49
3. झलमती है प्यास - डॉ० किशोर काबरा - पृ० 25

बिम्बों का उत्पादन होता है ।"[1]

कलकल छलछल, छन् छननन छन्
झन् झननन झन्, पायल छनकी जलधारा की ।[2]

या

बूँदों की टप-टप
चप्पू की छप-छप
धड़कन की धक-धक ।[3]

प्रथम उदाहरण में "जलधारा की पायल की छनक" की कमनीय कल्पना कर्णेन्द्रिय के माध्यम से आस्वाद्य बन पड़ी है - जबकि दूसरे उदाहरण में कवयित्री ने बूँदों की टप-टप और चप्पू की छप-छप के साथ दिल की धड़कन ध्वनि को अनुस्यूत कर एकविशद्र नाद बिम्ब प्रस्तुत करने में सराहनीय सफलता प्राप्त की है ।

3) स्पृश्य बिम्ब : स्पृश्य बिम्बों की संयोजना स्पर्शजन्य संवेदनों के समन्वय से होती है । डॉ० नगेन्द्र के विचार से ...."पेशल या कोमल, कर्कश, कठोर आदि विशेषण इस प्रकार के स्पर्श बिम्बों के वाचक शब्द हैं, जिनके बिम्बात्मक रूप अति प्रयोग के कारण जड़ बन गये हैं ।[4] नयी कविता के स्पृश्य-बिम्बों में रोमानियत अधिक है । साथ ही स्पर्श-जन्य सम्वेदनों और अधिक उत्तेजित करनेवाले उन प्राकृतिक पदार्थों को भी आधुनिक कवियों ने प्राधान्य दिया है । स्पृश्य-बिम्ब के उदाहरण देखिए :

"नव किसलय - सा, प्रिय का पाणिग्रहण कर
प्रहर्षित मुनि, निमिषमात्र में,
सघन कुंज के बीच, उटज में
सहसा अंतर्लीन हो गए ।[5]

---

1. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 9
2. भाव निर्झर - मधुमालती चोकसी - पृ० 77
3. नयी धरती नया आकाश - सुधा श्रीवास्तव - पृ० 33
4. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 9 5 समलोचना, डी. नागर पृ-50

यहाँ कवि ने बड़े ही संयत ढंग से बड़ी ही खूबी के साथ स्पर्शजन्य अनुभूति को प्रस्तुत किया है ।

अथवा

आओ......
स्पर्श करें, अनकहे बोल के
सच्चे स्नेह का,
प्यार की माटी से पनपते...
अपनेपन का ।[1]

4) घ्राण बिम्ब : घ्रातव्य - बिम्बों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न गंध-रूपों के प्रतीक फूलों द्वारा होती है । आधुनिक काव्य के घ्रातव्य - बिम्बों में हमें एक प्रकार की ताजगी मिलती है । इसमें गंध का प्राधान्य रहता है ।

जैसे -गन्धों के उपवन में
मुरझाये फूल
नयनों में छलक रहे
पतझर के शूल ।[2]

या

डरता हूँ क्यों ?
कमल के स्पर्श से
जल चुका हूँ ।[3]

---

1. अनुभूति - डॉ0 नलिनी पुरोहित - पृ0 29
2. ठहरी हुई धूप - अविनाश - पृ0 31
3. शाश्वत क्षितिज - डॉ0 भगवतशरण अग्रवाल - पृ0 31

4) आस्वाद बिम्ब : इसमें स्वादेन्द्रिय की प्रधानता रहती है । डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में... "सौन्दर्य के आस्वाद की अभिव्यक्ति और व्याख्यान दोनों में ही आस्वाद परक बिम्बों का प्रयोग स्वभावतः सरल होता है ।"[1]

जैसे "यादों के बन्हें
कड़वा मीठा स्वाद
दर्दीला गीत ।"[2]

दूसरा उदाहरण

स्मृति कोश में
संचित पड़े हुए हैं
तुम्हारे मीठे कड़ुवे अनुभव
हर पल तुम्हारी याद मुझे सताती रहती है ।[3]

(ब) सर्जक कल्पना के आधार पर

बिम्ब की संयोजना में सर्जक कल्पना और स्मृति का योग रहता है । अतः इनके आधार पर बिम्ब के दो प्रकार हो सकते हैं :-

1) लक्षित बिम्ब
2) उपलक्षित बिम्ब

---

1. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 10
2. टुकड़े टुकड़े आकाश - डॉ० भगवतशरण अग्रवाल - पृ० 35
3. स्मृति कोश - श्री मुकेश रावत

1) लक्षित बिम्ब : लक्षित बिम्ब की उत्त्पत्ति स्मृति के आधार पर होती है, जिसमें अतीत के अनुभव का प्रमुख स्थान होता है । जैसे -

पात झड़ जायें
अभी ही वृंत से
वय, रूप के
प्यार का बूढ़ा पखेरू
ठूंठ पर बैठा रहेगा ।[1]

2) उपलक्षित बिम्ब : उपलक्षित बिम्ब - विधान में स्मृति का तो स्थान रहता ही है किन्तु कल्पना की प्रधानता विशेष रूप से रहती है । अतः हमें दोनों का संयोग मिलता है । इसलिये इसे कल्पित बिम्ब भी कहा जा सकता है । डॉ० नगेन्द्र के विचार से "इसके विपरीत कवि - प्रौढोक्ति सिद्ध बिम्ब जो सक्रिय कल्पना की सृष्टि होते हैं, कल्पित बिम्ब कहलाते हैं ।"[2] "कवि प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध - जो कथन केवल कवि-कल्पना द्वारा निर्मित हों और बाह्य जगत में जिसकी स्थिति न हो, उसे "प्रौढ" कहते हैं ।(कविता प्रतिभामात्रेण बहिरसन्नपि निर्मित - का०प्र० पृ० 85) । चकोर का आग खाना, हंस का क्षीर-नीर विवेक, कीर्ति का श्वेत वर्ण आदि ऐसे अनेक कथन काव्य में मिलते हैं, जो लोक - व्यवहार में असंगत अथवा असंभव समझे जाते हैं । इन्हें कवि प्रौढोक्ति की संज्ञा दी गई है ।"[3] उपलक्षित बिम्ब में कवि लौकिक उपकरणों को अर्थ-गांभीर्य प्रदान करने के लिए कल्पित बिम्बों का संयोजन करता है, जैसे -

---

1. चांद चांदनी और कैक्टस - डॉ० नागर - पृ० 28
2. काव्य बिम्ब - डॉ० नगेन्द्र - पृ० 10
3. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 - पृ० 207

"नेत्रों में मेरे, क्या
चाँदनी का सुरमा झलक रहा है ?
जी,
यादें हैं, यादें हैं ।"[1]

उदाहरण

"याद के संग आकर नये वेश में
मीत छलता रहा रात भर ।
लाख चाहा पवन ने बुझाना मगर
दीप जलता रहा रात भर ।"[2]

(ग) बिम्बों के उपकरणों के संवेदन के आधार पर

बिम्बों के उपकरणों के संवेदन के आधार पर दो प्रकार के बिम्बों की संयोजना हो सकती है –

1) सरल
2) संश्लिष्ट

1) सरल बिम्ब : सरल बिम्ब पूर्वापर संबंध से मुक्त होते हैं । जैसे –

धान के ये घने प्यारे खेत
दूर पर कुछ दीखती है रेत
नारियल के झाड़ और पहाड़
मौन लगते कर रहे पर बात ।[3]

2) संश्लिष्ट बिम्ब : आधुनिक कवि की भूमि ही ईमानदारी है । यही कारण है कि हमें आधुनिक काव्य में उनकी अनुभूतियों और सच्चाई के दर्शन होते हैं । परिणामस्वरूप बिम्बों की एक श्रृंखला

---

1. समकालीन हिन्दी कविता – प्रो0 ललित शुक्ल – पृ0 55
2. भाव निर्झर – मधुमालती चौकसी – पृ0 11
3. जिन्दगी की राह में – कैलाशनाथ तिवारी – पृ0 12

हमारे समक्ष उपस्थित हो जाती है और उन्हें एक साथ अनुबन्ध करने से संश्लिष्ट बिम्ब बनता है अर्थात् परस्पर आबद्ध बिम्ब को संश्लिष्ट बिम्ब कहते हैं । उदाहरणतः -

पता नहीं, किस इतिहास प्रतीक्षा में
यहाँ शताब्दियाँ भी लेटी हैं, हिम कुल्यों में ।
शिव की गौर - प्रलम्ब भुजाओं सी, पर्वत मालाएँ
नभ के नील पटल पर, पृथिवी - सूक्त लिख रहीं ।[1]

बदली ने हम साड़ी निचोड़ पानी बिखराया धरती पर
भीगी धरती कुछ कुंभलाई, पर नन्हीं दूर्वा मुसकाई ।
बिजली की पायल बजी अचानक मेघों ने की वाह वाह,
खेतों के धुले धुले मुखड़े, पर बीरबहूटी शरमाई ।[2]

संश्लिष्ट बिम्बों का एक सुंदर उदाहरण देखिए -

सर्पों से उड़ती है चंदन की गंध
यायावर बांध रहे वासंती छन्द
सुमनों के मौसम में प्याला मकरंद
द्वन्द्वों में जीवन है जीवन में द्वन्द्व ।[3]

(ख) वस्तु चित्रण और अलंकृति के आधार पर

इनके माध्यम से बने बिम्बों के दो वर्ग हो सकते हैं -

1) वस्तु प्रधान बिम्ब
2) अलंकृति बिम्ब

वस्तु प्रधान बिम्बों की संयोजना यथार्थ की दृढ़ रेखाओं के आधार पर होती है । वस्तु बिम्ब के दो प्रकार है -

1) प्रति चित्रात्मक बिम्ब या यथातथ्य बिम्ब, 2) गत्यात्मक बिम्ब

---

1. महा प्रस्थान, यात्रा पर्व - श्री नरेश मेहता - पृ0 1
2. भाव निर्झर - मधुमालती चौकसी - पृ0 45
3. नयी धरती नया आकाश - रमेशचन्द्र शर्मा - पृ0 76

प्रतिबिम्बात्मक अर्थात् छाया चित्र की भाँति स्थिर होता है । इस प्रकार के बिम्बन में कवि मात्र वर्णन करता है और स्वतः निरपेक्ष रहता है । जैसे

चारों ओर मिलों की चिमनियाँ,
मुँह खोले भूतों की परछाइयों सी ।
बीच छः मंजिले मकान
मीलों तक सटे हुए ।[1]

इस मशीनी दौर में अब आदमी कुछ भी नहीं,
दफ्तरों की फाइलों से फड़फड़ाते लोग हैं ।[2]

यथातथ्य के बाद हम व्यापार व्यंजन का एक उदाहरण देखेंगे । जैसे -

साँझ की तोई हुई धूप
पेड़ों पर से फिसल कर
चढ़ाई-उतराई, कर रही है मेरे
वक्षःस्थल पर माला बनने के लिए ।[3]

जब वस्तु-प्रधान बिम्ब में स्थैर्य के साथ उसके व्यापार और गति का भी आभास होता है, तब उसे गत्यात्मक वस्तु बिम्ब कहते हैं ।

2) <u>अलंकृत बिम्ब</u> : अलंकार-प्रधान बिम्ब को ही अलंकृत बिम्ब कहते हैं । अलंकृत बिम्ब का आधार कलात्मक सौन्दर्य है । एज़रा पाउण्ड के मत से "इनका प्रयोग अलंकार के रूप में न होकर बिम्ब के रूप में होता है ।"[4] इस प्रकार के बिम्बों में सज्जात्मकता अधिक होती है ।

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ0 रामकुमार गुप्त - पृ0 32
2. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ0 भगवानदास जैन - पृ0 17
3. समकालीन हिन्दी कविता - उत्तरा चीनुभाई - पृ0 23
4. चार्ल्स नॉर्मन : एज़रा पाउंड - पृ0 99

आज पारंपरिक उपमाओं एवं सादृश्य विधानों का लोप एवं नये-नये उपमानों का प्रयोग बढ़ रहा है क्योंकि पुरानी उपमाओं द्वारा युगीन संभावनाओं का बिम्बन नहीं हो सकता है । नयी उपमा का एक उदाहरण देखिए :

"मेरे गाँव में
एक ऐसा है दिलेर मोर
जो लम्बे एन्टेना पर बैठकर
सन्ध्या से रात भर
भोर तक
कलगी पर नचाता रहता है ।"[1]

<u>अन्य प्रकार के बिम्ब</u> : प्रतीकात्मक बिम्ब - डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में "प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है, धीरे-धीरे उसका बिम्ब-रूप या चित्ररूप संचरणशील न होकर स्थिर या अचल हो जाता है । अतः प्रतीक एक प्रकार का अचल बिम्ब है, जिसके आयाम सिमटकर अपने भीतर बन्द हो जाते हैं ।[2] वस्तुतः बिम्ब जब बार-बार किसी भाव की अभिव्यक्ति देते हैं और उसका प्रतिनिधित्व करने लगते हैं, तब प्रतीक बन जाते हैं । बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार "शब्दों के समान, सचमुच बिम्ब भी प्रतीक की भाँति कार्य करते हैं ।"[2] जैसे -

जीवन तो साँसों में संवर रहा
बगिया में फूलों सा महक रहा
दहके अंगारों सा दहक रहा
सूरज बन बदली से चमक रहा ।[3]

---

1. डॉ0 रतनलाल पाठक - मेरा गाँव : तीन परिदृश्य : पृ0 180
2. काव्य-बिम्ब - पृ0 8
3. एन इन्क्वायरी इन टू मिनींग एंड ट्रुथ - बर्ट्रेन्ड रसेल - पृ0 228

दूसरा -

रंग-बिरंगी कोमल-कठिन - तरल - बेढ़ंगी
गाँठे ही गाँठें, अहं की सारी, पीठ पे लादे,
सर पे ढोये, सर में छिपाये ।[1]

प्रतीक विधान

"प्रतीक" शब्द अंग्रेजी के "सिम्बोल" का हिन्दी रूपान्तर है । प्रतीक का अर्थ है चिन्ह, किसी मूर्त के द्वारा अमूर्त की पहचान । यह अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा माध्यम है अर्थात् प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के निमित्त प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्ष या दृश्य का संकेत है । प्रतीक स्थूल विचारों को सूक्ष्मता प्रदान करता है । इसका शाब्दिक अर्थ है - "अवयव, अंग, पताका, चिन्ह, निराशा ।" प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति {प्रति + इण {गतौ} प्रति पूर्व[2] गमनार्थक "इण" धातु से मानी जाती है । {प्रति + इण + क्वण + स्वार्थेन} प्रति इण गतौ} में इण शेष रह जायगा, क्विप प्रत्यय और दीर्घीकरण से प्रतीक बन जाता है फिर स्वार्थे "कप" प्रत्यय के योग से प्रतीक शब्द सिद्ध होता है । इस सिद्धि के अनुसार प्रतीक का अर्थ हुआ, वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह मुख्य चिन्ह जो मूल का परिचायक हो ।[3] अमर कोश में दी गयी व्याख्या के अनुसार प्रतीक का अर्थ अंग, अवयव और कलेवर आदि से लिया जाता है ।[4] संस्कृत साहित्य में वैदिक[5] एवं उपनिषद काल से ही प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग होता रहा है परन्तु काव्य शास्त्रियों ने आगे चलकर इसे अलंकारों के अन्तर्गत समाहित कर लिया । प्रतीक का यौगिक अथवा रूढ़ अर्थ जो भी हो, इसका अधुनातन अर्थ फ्रांस में उद्भूत तथा समस्त पाश्चात्य साहित्य में संक्रमित प्रतीकवाद से प्रभावित है ।

---

1. पिछले बहार के सूरजमुखी - अविनाश - पृ0 43
2. विश्वकोश भाग-14 - नागेन्द्रनाथ वसु - पृ0 546
3. समकालीन हिन्दी कविता - प्रभास शर्मा {मेहता} - पृ0 108
4. छायावाद के गौरव चिन्ह - प्रो0 श्रीपालसिंह "क्षेम" - पृ0 226
5. अमरकोश श्लोक संख्या-470 - मनुष्यवर्ग संपादक - ज्ञान मण्डली - काशी
"अंग प्रतीकों वय वो पवनो थकलेवरम"

जब प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का अभेदारोप हो और प्रस्तुत स्वयं निगीर्ण रहे तब अप्रस्तुत ही प्रस्तुत का स्थानापन्न प्रतीक का काम करता है । काव्य भाषा में प्रतीक हमें गुणी द्वारा गुण तक पहुँचाता है । शास्त्रीय भाषा में इसे हम व्यंग्य रूपक, अध्यवसित रूपक अथवा रूपकातिशयोक्ति कह सकते हैं । प्रतीक और संकेत के मध्य जब परोक्ष या अज्ञात वस्तु का चित्रण किया जाता है तब उस चित्र को प्रतीक कहा जाता है । यह काव्य भाषा का महत्वपूर्ण उपादान है । प्रतीक अब अलंकार मात्र न रहकर स्वतन्त्र रूप से शिल्प तत्व कहलाने लगा है । वह अभिव्यंजना का संक्षिप्तीकरण है । इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है । "प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है, जो सीधे सादे अभिधा में नहीं बंधता, उसे आत्मसात् करने या प्रेरित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं ।[1]

श्री कुट्टि के अनुसार "प्रतीक वह अप्रस्तुत है जो प्रस्तुत का एकदम स्थानभ्रष्ट करके उसका स्थान ग्रहण कर लेता है और अपनी चतुर्मुखी समानधर्मिता द्वारा प्रस्तुत की सशक्त और सुस्पष्ट अनुभूति पाठकों में जगाने में समर्थ होता है ।"[2] शिल्पे ने प्रतीक को एक विशेष प्रकार का संकेतात्मक शब्द कहा है ।[3] जबकि वेबस्टर ने प्रतीक को अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत कहते हुए स्पष्ट किया है कि प्रतीक सादृश्य का उद्देश्य लेकर नहीं चलते हैं, अपितु भाव-व्यंजना को व्यक्त करते हैं । जॉर्ज वेल ने प्रतीक को "ए फोकस ऑफ रिलेशन शिप" कहा है ।[4] हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा किसी अन्य स्तर की समान रूपवस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है ।[5] अमूर्त अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक विधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है ।[6] आचार्य शुक्ल के अनुसार प्रतीक

---

1. आत्मनेपद - अज्ञेय - पृ0 45
2. हिन्दी की नयी कविता - वी नारायण कुट्टि - पृ0 135
3. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स - पृ0 405
4. पोएटिक प्रौसेस - जॉर्ज वेले - पृ0 166
5. हिन्दी साहित्य कोश - सं0 धीरेन्द्र वर्मा - पृ0 471
6. हिन्दी साहित्य कोश - सं0 धीरेन्द्र वर्मा - पृ0 471

का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं बल्कि भावना जगाने की निहित शक्ति है। पर अलंकार में उपमान का आधार सादृश्य ही माना जाता है। अतः सब उपमान प्रतीक नहीं होते पर जो प्रतीक उपमान होते हैं वह काव्य की बड़ी अच्छी सिद्धि करते हैं।[1] काव्य भाषा में प्रतीकों का बड़ा ही महत्व रहता है।

प्रतीकों का वर्गीकरण गुण, अर्थ एवं स्त्रोत आदि आधारों पर किया जा सकता है किन्तु स्त्रोत या विषय को आधार बनाकर किया गया वर्गीकरण ज्यादा समीचीन होगा।

पाश्चात्य विद्वान पीट्स ने इन्हें ध्वनि निर्भर एवं दृष्टि निर्भर, पाल एल्मर मोर ने गूढार्थ, संस्करणात्मक, औपम्यमूलक और वस्तुगर्भ, अर्बन ने ऐच्छिक, वर्णनात्मक और सूक्ष्म, डॉ० कुमार विमल ने कूट, वैपरीत्यमूलक, रहस्यारूढ़, परम्परित, छायावृत्त, प्रयोग विशिष्ट, लोकोपचेतन, उपमा मूलक, समासोक्तिमूलक, लक्षणामूलक[2], डॉ० केदारनाथसिंह ने परम्परागत, साम्प्रदायिक, आध्यात्मिक, रहस्यात्मक, वैयक्तिक एवं स्वानुपरक[3], कैलाश बाजपेयी ने पौराणिक, धार्मिक, बहुचेतना, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक[4], डॉ० रणजीत ने प्रकृति संबंधी, पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक - जीवन से सम्बन्धित[5], डॉ० हरिशरण शर्मा ने सांस्कृतिक, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं राजनैतिक[6] तथा डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी ने काव्यशास्त्रीय परम्परित, अन्य देशगत, नवीन शिल्पगत मौलिक एवं वैयक्तिक आदि विविध वर्गों में पृथक-पृथक ढंग से विभक्त किया है।[7]

---

1. चिन्तामणि भाग-2 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ० 121
2. सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व - डॉ० कुमार विमल
3. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान - केदारनाथसिंह
4. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, - कैलाश बाजपेयी - पृ० 77 - 78
5. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत - पृ० 325
6. नयी कविता का मूल्यांकन : परम्परा और प्रगति की भूमिका पर - डॉ० हरिचरण शर्मा - पृ० 253
7. नयी कविता : रचना प्रक्रिया - डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी - पृ० 160

आधुनिक काव्य में परम्परित और नव्य दोनों प्रकार के प्रतीक मिलते हैं। हम उन्हें इस प्रकार से विभाजित कर सकते हैं -

1) सांस्कृतिक प्रतीक - धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक

2) राजनैतिक प्रतीक

3) वैज्ञानिक और यथार्थ बोध संबंधी प्रतीक

4) अन्य प्रतीक

1) <u>सांस्कृतिक प्रतीक</u> : नया कवि बौद्धिक, अध्ययनशील और प्रबुद्ध विश्लेषण करता है। यही कारण है कि विदेशी संस्कृति, धर्म तथा इतिहास से सम्बद्ध कई प्रतीक उसके ~~ना~~ नव्य-काव्य में प्रयुक्त हुए है। पौराणिक एवं धार्मिक प्रतीकों की भांति नए कवि ने इतिहास के पृष्ठों से भी प्रतीक ग्रहण किए हैं। आज का कवि जीवन की विषमता और संघर्षपूर्ण स्थिति से ऊबा हुआ एक व्यवस्थित धरातल पर उतर आने के लिए आतुर है। आधुनिक कविता में सांस्कृतिक प्रतीकों का अन्य प्रतीकों की तुलना में बहुतायत से प्रयोग हुआ है। इन्होंने जन-जीवन-वैषम्य का पुराण, इतिहास, साहित्य व ~~व~~ रामायण आदि धार्मिक कथा संदर्भों को न्यायिक औजार के रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने परम्परित प्रतीकों को नये जीवन से जोड़कर मानव-मूल्यों का नतीहती आंकड़ा निर्मित किया है। समाज में पनपनेवाले अन्याय, पाखंड, शोषण, ढोंग, प्रपंच-छल, विद्वेष, बर्बरता, क्रूरता, अराजकता एवं अत्याचार के काले कारनामे को भस्म करने के लिए नये कवियों ने सांस्कृतिक प्रतीकों को नये जीवन-संदर्भों से जोड़ने का उपक्रम किया है।

<u>पौराणीक प्रतीक</u> -

हिम - शिखर पर बह रही
मानों प्रतीकों की नदी
इन्द्रियों के बीच जैसे प्राण हैं
साथ में नव जागरण का गान है।
मृत्यु का चिरमौन हिमगिरि का शिखर,
चेतना का यह महाप्रस्थान है।

षड्विकारों के शमन की, वह प्रतीकों में कथा है
द्रौपदी के गहन पश्चाताप की इसमें व्यथा है ।[1]

अथवा

न केवल दैव - निर्मित ने,
साथ मिले प्रपंच - अवीरत्व ने
वीर अभिमन्यु का किया शतशः छेद !
अपने वक्ष
उसी क्षण, काल - प्रवाह ने
उमंग से लहराता कर दिया है शाश्वत
शुद्ध सदाबहार पुष्पकमल हो ।[2]

अब हम ऐतिहासिक प्रतीक की ओर एक नजर डालेंगे -

चक्रव्यूह के कायर वीर
कभी इस पक्ष में
तो कभी उस पक्ष में
इतिहास के पृष्ठों को काला करते
अपनी अपनी जगह खड़े
अपने अपने युग के अभिमन्युओं को मारकर
अपनी अपनी नपुंसक विजय पर
हर्षोल्लास मनाते रहे हैं ।[3]

दार्शनिक प्रतीक में हम श्री नरेश मेहता को देख सकते हैं । जैसे -

एक सनातन प्रश्न
यज्ञ की धूमाग्नी सा शाश्वत उठता
है कौन नियन्ता
कार्य और कारण जिससे उद्भूत हो रहे ।[4]

---

1. उत्तर महाभारत - किशोर काबरा - पृ0 14
2. ईप्सा - हरित बुध - पृ0 38
3. प्यासी धरती खाली बादल - डॉ0 भगवतशरण अग्रवाल - पृ0 3
4. महाप्रस्थान - श्री नरेश मेहता - पृ0 39

सामाजिक प्रतीक -

महंगाई के दामन में,
मांगों की सूची लिए,
कटौती के पैबन्दों से
सजती है जिन्दगी,
खोखले डिब्बे में,
कंकड़ की कड़-कड़ सी,
कई अजब रंग लेकर,
बजती है जिन्दगी ।[1]

धार्मिक प्रतीक -

जिस मंदिर का निर्माण किया अब तक,
उसकी छत नकली निकली
शोले बिछे हुए फर्श पर,
दीवारों में विद्युत बहती,
छत से लहू टपक रहा,
तड़ - तड़ धड़ - धड़ की आवाजें बहतीं ।[2]

2) <u>राजनैतिक प्रतीक</u> : राजनीतिक प्रतीकों की धारदार अभिव्यंजना से संसद, संविधान, शासन, मंत्री आदि के सर्जनात्मक एवं विध्वंसात्मक संदर्भों को अंकित कर अधिकार, न्याय एवं कर्तव्य आदि की असलियत का संस्फुरण किया गया है । राजनैतिक प्रतीकों के माध्यम से जनवादी मूल्यों को प्रकाश में आने का सहज अवसर मिला है ।

---

1. बोनसाई संवेदनाओं के सूरजमुखी - मंजु "महिमा" - पृ० 25
2. नयी धरती नया आकाश - प्रभास शर्मा (मेहता) - पृ० 90

स्वार्थ, संकुचितता के काटे
हमको इससे अधिक न बाटे
भारत हो यह पावन मन्दिर
भारतीयता मंत्र हमारा
अमर रहे जनतंत्र हमारा ।[1]

3) <u>वैज्ञानिक और यथार्थबोध संबंधी प्रतीक</u> : यांत्रिक एवं वैज्ञानिक संदर्भों में जीनेवाले नये कवियों ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए विविध उपकरणों का भी सहारा लिया है । मानव-जीवन से जुड़ी हुई वैज्ञानिक उपलब्धियों के माध्यम से नये कवि ने अपनी संवेदनाओं को भलीभांति सम्प्रेषित किया है । आधुनिक काव्य के उत्तरार्द्ध में आते-आते अर्थात् नयी कविता तक आते-आते हमें वैज्ञानिक बिम्बों, प्रतीकों एवं उपमानों का न्यूनतम रूप में प्रयोग मिलता है । इसमें जन-जीवन से जुड़े हुए वास्तविक सवालों को यथार्थबोध सम्बन्धी प्रतीकों के माध्यम से मूर्तित किया गया है । साथ ही रोजमर्रा की जिन्दगी के परिवेश से प्रभावित उपकरण हम पाते हैं । नये कवि ने वैषम्य के मध्य जीवन को जीने का अभ्यास और उपक्रम किया है । अतः उनकी रचनाओं में भी सामान्य जीवन के उपकरण प्रतीक रूप में सहज भाव से समाहित हो गए हैं । कमरा, वन, सांप, सिगरेट आदि शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग नए कवि की परम्परा सी बन गई है । साथ ही दैनिक जीवन के सहज चित्र भी प्रतिलक्षित होते हैं जो आज की युगीन विषमता, खोखलेपन और आस्था को व्यक्त करते हैं । सर्वथा नवीनता का नारा लगानेवाले उन कवियों ने प्रतीक योजना में परम्परागत प्रतीकों को भी स्वीकार किया है किन्तु यह विज्ञान का युग है और वैज्ञानिक उपकरणों ने जीवन के हर कोने को प्रभावित किया है । कविता का जीवन के साथ रागात्मक संबंध है । अतः इसमें भी वैज्ञानिक प्रतीकों की योजना हुई है ।

यथार्थ बोध सम्बन्धी उदाहरण देखिए । जैसे -

---

1. चैरवेति - रामअवधेश त्रिपाठी - पृ0 28

तपती रेत पर मुट्ठी भर छाँव
लहराते खेत के बीच अंकुर के पाँव
गिलहरी के सपने, चिड़िया का घोंसला,
थके हुए राहगीर का बढ़ता हुआ हौसला ।[1]

कलात्मक प्रतीक देखिए –

"पीड़ा की पीली चूनर पर डाल गुलाल, छिप गया राग
जलती साँसों की गलियों में छिड़का समीर ने मधु-पराग ।
विकसित शतदल से मुदित भाव, उच्छल लहरों का गान
रे बीत गए बिछुड़न के क्षण, जुड़ गए प्राण, हसता सुहाग ।[2]

4) अन्य प्रतीक : प्राकृतिक यौन सम्बन्धी प्रतीक अर्थात् प्रकृत प्रतीक, कलात्मक प्रतीक, सैद्धान्तिक प्रतीक अर्थात् दार्शनिक प्रतीक आदि को हम सम्मिलित कर सकते हैं । प्राकृतिक प्रतीकों को नये जनवादी कवियों ने मानव मूल्यों के संस्थान में नये ढंग से ग्रहण कर उन्हें नया अर्थ प्रदान किया है । आधुनिक कविता ने यथार्थ संवेदना को स्थापित करने के लिए मूर्तामूर्त दोनों प्रकार के प्रतीकों को ग्रहण करने के साथ ही उनमें नया अर्थ भरकर उन्हें व्यंजना का माध्यम बनाया है । प्रकृत प्रतीकों से हमारा आशय उन प्रतीकों से है जिनका उपयोग नए कवि ने अपनी दमित कुंठाओं और अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति के लिए किया है । कलात्मक प्रतीक से हमारा तात्पर्य आधुनिक कविता में शिल्प-प्रयोगों की विविधता एवं अधिकता से है । सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत राजनैतिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक प्रतीक माने गए हैं । हम राजनैतिक एवं वैज्ञानिक प्रतीकों से तो अवगत हो ही चुके है, पौराणिक और धार्मिक प्रतीकों की ही भाँति दार्शनिक प्रतीकों का भी बड़ा महत्व होता है । दार्शनिक प्रतीकों पर हमें परम्परिकता का प्रभाव दृष्टिगत होता है । यहाँ प्राकृतिक प्रतीक एवं प्रकृत (यौन) प्रतीक के उदाहरण देखिए –

---

1. रेत पर हस्ताक्षर – शशि अरोर – पृ0 22
2. सुजान की पाती – मधुमालती चौकसी –

प्राकृतिक प्रतीक :

खेतों की मेंडों में ओस बिछी
अरहर भी मन मारे कांप रहा
सरसों के शैशव के आंगन में
आने को तत्पर मधुमास हुआ ।[1]

प्रकृत (यौन) प्रतीक का एक उदाहरण देखिए :

"डूबि गए कितनेक तिराक, अथाह सनेह को सिन्धु ललाम है ।
न्हात अन्हात कबों न हियैं, बहि जात सबै मन मान को धान है ।
जा दिन घाट निराट मिली, छबिबान अनूप भई, अभिराम है ।
स्याम के रंग में गोरी रंगी, तब गोरी के रंग रंग्यौ घनस्याम है"।[2]

रस

रस का अर्थ है आस्वाद - "आस्वाद्यत्वाद्रसः" - रस वही है जिसका आस्वाद हो सके, भोग हो सके । रस तो सभी भावुकों के अनुभव की चीज है । लौकिक और भौतिक भावों के अलौकिक और काव्यमय स्वरूप को रस कहते हैं ।

रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है । रस-सिद्धान्त का विवेचन करते हुए भरतमुनि ने लिखा है कि विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है ।[3] आचार्य विश्वनाथ ने रसयुक्त वाक्य को काव्य कहा है ।[4] रस का सम्बन्ध अनुभूति से है । इसका स्पष्टीकरण करते हुए डॉ० रघुवंश ने लिखा है कि रस-निष्पत्ति का मूलाधार सौन्दर्यानुभूति है ।

---

1. ठहरी हुई धूप - अविनाश - पृ० 39
2. फैली पलाश के कानन लौं - डॉ० विष्णु विराट -
3. विभावानुभाव व्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः । -"नाट्यशास्त्र" - भरतमुनि - 6:32
4. वाक्यं रसात्मकं काव्यं । - साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ - 1/3

स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी आदि का वर्णन, विवेचन तथा "विस्तार" मात्र इसलिए है कि रस-सिद्धान्त काव्य की व्याख्या मनुष्य के मनोभावों के आधार पर करने का प्रयत्न करता है।

1) विभाव दो प्रकार के होते हैं - "आलम्बन" और "उद्दीपन"। आलम्बन - जैसे नायक और नायिका, उद्दीपन - जैसे चाँदनी, उद्यान, मलय पर्वत आदि।

2) कटाक्ष, रोमांच आदि शरीर संबंधी विकारों को "अनुभाव" कहते हैं।

3) "संचारीभाव" वे हैं जो मन में उठते-पड़ते और आते-जाते रहते हैं। शास्त्रकारों ने बताया है कि संचारी-भाव कुल तैंतीस हैं।

4) काव्य या नाटक में कुछ ऐसे भाव होते हैं जो शुरू से अन्त तक रहते हैं, जिनको "स्थायी-भाव" कहते हैं। ये ही स्थायी-भाव "रस" रूप में परिणत होते हैं।

रस की संख्या नौ है मानी गई हैं, किन्तु रस तो सदा भेद-रहित और एकरस है। नौ रसों के स्थायी-भाव भी नौ हैं। जैसे

रस	स्थायी-भाव	रस	स्थायी-भाव
शृंगार	रति या लगन	वीर	उत्साह
हास्य	हास	भयानक	भय
करुण	शोक	वीभत्स	जुगुप्सा
रौद्र	क्रोध	अद्भुत	विस्मय
		शान्त	निर्वेद

भरत मुनि ने प्रधान रस चार माने हैं - शृंगार, वीर, विभत्स और रौद्र। इनसे चार और रसों का उदय होता है। शृंगार से हास्य का, वीर से अद्भुत का, विभत्स से भयंकर का और रौद्र से करुणा का। साथ ही शांत को भी इसके अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

कुछ शास्त्रकारों ने शृंगार-रस के तीन प्रकार माने हैं - अयोग, विप्रयोग और संयोग। धनंजय के अनुसार अयोग की दस अवस्थाएं होती हैं। अभिलाषा, चिंतन, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर, जड़ता और मरण। विप्रयोग शृंगार अर्थात् संयुक्त व्यक्ति वियुक्त हो जायें। उसके दो प्रकार हैं -

मान-जनित और प्रवास-जनित । मान-जनित के दो प्रकार हैं - प्रणय-मान और ईर्ष्या-मान । प्रेम से वशीभूत होने को प्रणय कहते हैं । मान किसी प्रकार से इसके भंग होने से जो कलह होता है उसे प्रणय-मान कहते हैं । नायक किसी दूसरी स्त्री से अनुरक्त है, इससे जो ईर्ष्या होती है उसे ईर्ष्या-मान कहते हैं । संयोग श्रृंगार अर्थात् जिसमें दोनों परस्पर अनुकूल होकर दर्शन स्पर्श आदि के द्वारा आनंदपूर्वक एक-दूसरे का उपभोग करते है । श्रृंगार रस सर्वाधिक व्यापक रस है । इसमें आठों स्थायी भावों का, आठों सात्त्विकों का और सभी संचारियों का रस-पुष्टि के लिये उपभोग हो सकता है ।

श्रृंगार हमारे यहाँ श्रृंगार-रस "रस-राज" की उपाधि से अलंकृत किया गया है । सच पूछो तो प्रेम को ही "रसराज" की पदवी से विभूषित करना चाहिए । श्रृंगार आरम्भ में भोग-प्रधान होता है, पर हृदय धर्म की रासायनिक क्रिया से वह भावना-प्रधान बन जाता है । यह रसायन और परिणति ही काव्य और कला का विषय हो सकती है । इसे हम "प्रेम-रस" कह सकते हैं । प्रेम ही आत्मा है । श्रृंगार को तो केवल उसका आलम्बन-विभाव कह सकते हैं । श्रृंगार के वर्णन से मनुष्य की चित्त-वृत्ति सहज में ही उद्दीपित की जा सकती है । यही कारण है कि सभी कालों की कला में श्रृंगार रस की प्रधानता पाई जाती है । जैसे ऋतुओं में वसंत उन्मादकारी है, उसी तरह रसों में श्रृंगार । संयोग श्रृंगार का उदाहरण -

'पुलकाय हुआ
तन-तरुवर
देह-वल्लरी के भी
सकल मनोरथ सिद्ध हुए
धरा धन्य हो गई
मेघ भी
गरज - बरस संतृप्त हुए ।[1]

---

1. प्रम्लोचा - डॉ० नागर - पृ० 64

वियोग श्रृंगार -

"पागल पुरवइया क्यों कसक रही प्राणों में
सूना सा आज लगे ड्योढ़ी - घर - आंगन ।
यादों के मेघ - धनुष सतरंगी चूनर से
ताके झांके जाते हैं बिसरे वृन्दावन ।[1]

हास्य रसः अपने अथवा पराए परिधान, वचन अथवा क्रिया-कलाप से उत्पन्न हुए हास का परिपुष्ट होना हास्य-रस कहलाता है । हास्य के छः भेद होते हैं - स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित । निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि और मूर्छा हास्य के सहायक संचारी हैं । हास्य रस आधुनिक काव्य का महत्त्व का अंग है । संस्कृत साहित्य में ऊंचे दर्जे का हास्य-रस बहुत ही कम पाया जाता है । जबकि आधुनिक हिन्दी काव्य में हास्य-रस के अनेक सफल प्रयोग हमें मिलते हैं । खास कर गीति - सम्मेलनों में हमें हास्य-रस के ही प्रयोग अधिक नजर आते हैं किन्तु हमारे व्यंग्य-चित्रों और प्रहसनों में पाया जानेवाला हास्य रस अब भी अधिकांश में निम्न श्रेणी का है । आज हमें सस्ते और साधारण कोटि के हास्य-रस को कुछ इस प्रकार से उच्च कोटि का बनाना होगा ।

"घुसते ही घर में यूं पति बोले पत्नी से,
अपन कूं छोड़ि तेरे कितने दिवाने हैं ।
बोली प्राणनाथ से यूं पत्नी सकुचि कछु,
आपके अलावा मेरे दो ही तो दिवाने हैं ।
महीना में बार दो मिलन जाती उनसे मैं,
आपसे बना के झूठ-मूठ से बहाने हैं ।
केरोसिन तेल वाला, राशन दुकानवाला,
आपके अलावा मेरे दो ही तो दिवाने हैं ।[2]

---

1. पिछली बहार के सूरजमुखी - अविनाश - पृ0 21
2. डॉ0 माणेक मृगेश

शोक स्थायी से करुण-रस होता है । इसमें इष्ट-नाश अथवा अनिष्टागम आदि विभाव और निःश्वास उच्छ्वास, रुदन, स्तंभ, प्रलाप आदि अनुभाव तथा निद्रा, अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य, आवेग, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिंता आदि संचारी भाव सहायक होते हैं ।

करुण-रस ही रस सम्राट है । भवभूति ने करुण शब्द को बहुत व्यापक बनाया । उनके मत से जहाँ हृदय कोमल हो, उन्नत हो, सूक्ष्मग्र हो वहाँ कारुण्य-छटा आयेगी ही । उन्होंने एक ही रस को माना है और वह करुण रस है । वात्सल्य-रस, शांत-रस और उदात्त-रस – ये करुण के ही अलग-अलग पहलू हैं । हमारे साहित्यकारों ने करुण-रस का बहुत सुन्दर विकास किया है । कालिदास का "अज-विलाप" अथवा भवभूति का "उत्तर-रामचरित" करुण-रस के उत्तम से उत्तम नमूने माने जाते हैं । करुणरस ही मनुष्य की मनुष्यता है ।

"ओ पिता !
ऐ माँ, धरा में धंस रही हूँ मैं ।
बताओ, क्या करूं मैं ?
मग्न होती जा रही हूँ, कहाँ जाऊँ ?
ऐ धरा, तू फट यहीं, तुझमें समाऊँ ।
इस सखी की लाज रख लो ओ कन्हैया !
डूबती है नाव मेरी, ओ खिवैयो" ।[1]

शत्रु के प्रति मत्सर तथा घृणा आदि भावों से विभावित, क्षोभ अपने होठों को दांतों से दबाना, कंप, भ्रुकुटी टेढ़ी करना, पसीना, मुख का लाल होना, शस्त्रास्त्रों को चमकाना, गर्वोक्ति करते हुए कंधे फैलाना, धरणी को जोर से चाँपना, प्रतिज्ञा करना आदि अनुभावों से परिवृद्धि तथा अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया, उग्रता, आवेग आदि संचारियों से परिपुष्ट क्रोध स्थायी को रौद्र-रस कहते हैं ।

---

1. उत्तर महाभारत – डॉ० किशोर काबरा – पृ० 84

मनुष्य भव्य वस्तु के साथ अपना मुकाबिला करता ही रहता है । ऐसा करते करते जब वह थक जाता है तब उससे रौद्ररस प्रकट होता है -

"संग्राम चल रहा था प्रचंड
धनु - विशिक्त हो रहे खंड खंड
रथ - अश्व दौड़ते इधर-उधर
कट - कट गिरते थे, रुण्ड-मुंड ।[1]

वीर : प्रताप, विनय, अध्यवसाय, अविषाद, सत्व [धैर्य],हर्ष, नय, विस्मय, विक्रम आदि विभावों से उत्साह स्थायी का परिपाक होने पर वीर-रस होता है । इसमें मति, गर्व, धृति और प्रहर्ष संचारी सहायक होते हैं । वीर-रस तीन प्रकार का माना जाता है - दयावीर, दानवीर और युद्धवीर । नागानंद में जीमूतवाहन दयावीर के, महावीरचरित में राम युद्धवीर के तथा पौराणिक आख्यानों में राजा बलि दानवीर के उदाहरण हैं । सत्यवीर, धर्मवीर आदि भी वीर-रस के अन्तर्गत स्थान पाते हैं । वीर-रस मनुष्य-द्वेषी नहीं है । वह परम कल्याणकारी, समाज-हितकारी और धर्म परायण आर्यवृत्ति का द्योतक है । उसका रूप यही होना चाहिए । वीर-रस अपने शुद्ध रूप में आत्म-विकास को सूचित करता है । वीर-रस में प्रतिपक्षी के प्रति द्वेष, क्रूरता, अहंकार का प्रदर्शन आदि आवश्यक नहीं है । साहित्य कुछ वास्तविक जीवन का सम्पूर्ण फोटोग्राफ नहीं होता । जिनकी वस्तुओं की तरफ ध्यान खींचना आवश्यक होता है, साहित्य में उन्हीं की चर्चा की जाती है । इष्ट वस्तु को ध आगे रखना और अनिष्ट वस्तु को दबाना साहित्य तथा कला का ध्येय है । इस पुरस्कार एवं तिरस्कार के बिना कला का ठीक ठीक विकास नहीं होने पाता । साहित्य में वीर-रस को जिन चीजों से हानि पहुँचती हो उन्हें साहित्य से निकाल डालना चाहिए । तभी वह कलापूर्ण साहित्य होगा । वीर-रस के पोषण और संरक्षण का भार वीरों के ही हाथ में होना चाहिए । वीर-वृत्ति को पहचाननेवाले कवि, चारण और शायर

---

1. सुजान की पाती - मधुमालती चौकसी -

अलग हैं और अपनी रक्षा की तलाश में रहनेवाले कायर और आश्रित अलग हैं । शान्तिप्रिय, अहिंसापरायण, समन्वय प्रेमी संस्कृति का वीर-रस तो त्याग के रूप में ही प्रकट होगा । आत्म विलोपन, आत्म-दान ही जीवन की सच्ची वीरता है ।

"ओ कुपित भीम का अहंकार, गरजा भीषण सह कर प्रहार
रथ त्याग सफलता से सत्वर, पहुँचा समीप ही दुर्निवार,
बल का विक्रम हुंकार उठा, था प्रलय स्वयं ललकार उठा"।[1]

<u>भयानक</u> : विकृत स्वर और अधैर्य आदि विभावों से उद्दित भय स्थायी से भयानक रस की उत्पत्ति होती है । इसमें वेपथु, स्वेद, शोक और वैचित्र्य - ये अनुभाव और दैन्य, संभ्रम, मोह, त्रास आदि संचारी उसके सहायक होते हैं । भयानक रस भी रसों में महत्वपूर्ण माना जाता है । हृदय की भिन्न भिन्न अनुभूतियों एवं शक्ति के आविर्भाव से हृदय दब जाता है, अपनी लज्जा खो बैठता है, तब भयानक रस का निर्माण होता है ।

धाँय धाँय कर गोली बरसे, रहि रहि बम्ब परै अरराय ।।
मानौ चमचम बिजली चमके, बादल धड़ड़ - धड़ड़ घहराय ।।
लरकोरिन के लरिके दुबके आँचर नीचे लुके डेरायँ ।।
डर के मारे चिरई चुरगुन, डरियन पतियनमां छुपि जायँ ।।[2]

विभत्स रस का आधार जुगुप्सा है । इसमें कीड़े, सड़न आदि से उद्वेग होता है । रक्त, हड्डियाँ और मज्जा-मांस आदि के दर्शन से क्षोभ होता है । इसमें नासा-संकोच और मुख मोड़ना आदि अनुभाव और आवेग, व्याधि तथा शंका - ये संचारी भाव होते हैं ।

---

1. सुजान की पाती - मधुमालती चोकसी
2. फागुन बीते जा रहे - सूर्यदीन यादव - पृ० 45

"गिद्ध ने नोच-नोच खाए, कंठों के गीत, अधर के गान ।
काग ने कोंच-कोंच काटे, आखों के धनुष, दृष्टि के बाण ।
चील ने चीख-चीख खींची, आँतों की भूख, गले की प्यास ।
श्वान ने चीथ-चीथ चूसी, होठों की हंसी, हृदय की फाँस"।[1]

<u>अद्भुत</u> : आश्चर्यजनक लौकिक पदार्थों से अद्भुत रस होता है । साधुता, अश्रु, वेपथु, स्वेद और गद्गद वाणी – ये इसके अनुभाव होते हैं और हर्ष, आवेग, धृति आदि इसके पोषक संचारी भाव । शम नामक स्थायी भाव के परिपाक की अवस्था में पहुँचने से शांत-रस होता है । सांसारिक सुख तथा देह की क्षण-भंगुरता, संत-समागम और तीर्थाटन आदि इसके विभाव हैं तथा सर्व भूतदया, परमानंद की अवस्था, तल्लीनता, रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं । मति, चिंता, धृति, स्मृति, हर्ष आदि संचारी भाव इसके परिपोषक हैं । शांत-रस सर्वोत्तम रस है । उसमें हमें निर्वेद और मनोयोग मिलते हैं ।

"उगेगा वह दिन कभी
जब कोहरे से छनकर मीठी
धूप से धरा होगी सद्यःस्नाता"[2]

या

"इस अनन्त राह पर,
प्रकाश की किरणें फूटीं,
दूर हुए मन के अंधियारे,
ज्योति किरण प्रज्वलित हुई"।[3]

---

1. उत्तर महाभारत – डॉ० बाबरा – पृ० 20
2. वो दिन कब आयेगा ? – डॉ० रजनीकांत शाह
3. नीलाम्बर के नीचे – डॉ० शान्ति सेठ – पृ० 71

आधुनिक आचार्यों ने नवीन रसों की कल्पना की है जो अनिवार्य है। जैसे हिन्दी में सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने भक्ति रस को माना। प्रकृति रस, देशभक्ति रस, क्रांति रस, उद्वेग रस और प्रक्षोभ रस को स्थान मिला। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अत्यन्त प्रबल शब्दों में प्रकृति रस की स्थापना की है। जबकि हिन्दी में डॉ० गुलाबराय और मराठी में श्री शिवराम पंत परांजपे तथा प्रो० जोग ने देशभक्ति रस की स्वतंत्र मान्यता प्रदान की है।

अन्य नवीन रसों क्रांति, उद्वेग, प्रकोप आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों को लक्षित करते हैं। अब नौ रसों के भेद के पश्चात उसके उपभेद जानना अनिवार्य है। जैसे -

श्रृंगार	-	संयोग, विप्रलम्भ {52}
हास्य	-	आत्मस्थ, परस्थ
करुण	-	धर्मोपघातज, अर्थापचयोद्भव, शोककृत
वीररस	-	दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर
भयानक	-	व्याज जन्य {कृत्रिम}, अपराध जन्य, वित्रासितक
विभत्स	-	क्षोभण, उद्वेगी
अद्भुत	-	दिव्य, आनन्दज
रौद्र	-	आंगिक, वेषात्मक, वचनात्मक
शांत	-	

अर्थात् श्रृंगार के 52, हास्य के 36, करुण के 8 वीर के 6, भयानक के 6, विभत्स के 6, अद्भुत के 2, रौद्र के 3 = सर्वयोग 122

रस और साधारणीकरण, एक दूसरे के पूरक है। बिना साधारणीकरण के हमें उसका सही रूप में आनन्द नहीं मिलता। जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलंबन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ "साधारणीकरण" कहलाता है।" साधारणीकरण अर्थात् विभाव, अनुभाव आदि को साधारण रूप देकर सामने लाया जाय। क्योंकि साधारणीकरण कवि अथवा भावक की चित्तवृत्ति से संबंध रखता है। चित्त के एकतान और साधारणीकृत होने पर उसे सभी कुछ साधारण प्रतीत होने लगता है। तभी रसास्वादन संभव है। अर्थात् रस एवं साधारणीकरण परस्पर सम्बन्ध रखते हैं।

अलंकार

अलंकार सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य भामह एवं रुद्रट हैं । इन आचार्यों ने अलंकार को ही काव्य की आत्मा माना है । अलंकार की व्युत्पत्ति "कृ" धातु में "अलम्" उपसर्ग एवं "घञ्" प्रत्यय लगाकर हुई है । अलंकार शब्द की व्याख्या है - अलंकरोतीति अलंकारः अर्थात् जो वस्तु सुशोभित करे, वही अलंकार है । भामह के अनुसार अलंकार ही काव्य का अनिवार्य प्राण तत्व है । उनके मंतव्य से प्रकृत कान्त होने पर भी वनिता के मुख पर भूषण के बिना जिस प्रकार आभा नहीं आती, उसी प्रकार नितान्त प्रकृत रूप से वाणी में चारुता नहीं आती । वाणी की अलंकृति के लिए क्रामिधेय शब्दोक्ति आवश्यक है ।[1] शब्द और अर्थ का वैचित्र्य ही अलंकार है ।[2] अर्थात् अलंकार भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि करते, उसका उत्कर्ष बढ़ाते और रस, भाव आदि को उत्तेजित करते हैं । इन्हें शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म भी कहा है क्योंकि जैसे भूषणों के बिना भी शरीर की नैसर्गिक शोभा बनी रहती है, उसी प्रकार अलंकार के न रहने पर भी शब्द और अर्थ की सहज सुंदरता, मधुरता आदि बनी रहती है । फिर भी अलंकारों का अपना एक अलग ही महत्व है । अलंकारों के प्रयोग से कविता में रमणीयता एवं सौन्दर्य का सन्निवेश होता है ।

दण्डी के अनुसार "अलंकार काव्य को सौन्दर्य प्रदान करनेवाला धर्म है" ।[3] भामह ने वक्रोक्ति को महत्व दिया है । उनके मत से "वक्रोक्ति के बिना कोई अलंकार नहीं हो सकता, क्योंकि अर्थ को विभामय करनेवाली सम्पूर्ण विधा वक्रोक्ति ही है ।[4] भामह की तरह दण्डी भी अलंकारों के समर्थक हैं । भामह "वक्रोक्ति" को काव्य का प्राण तत्व और उसे ही काव्यार्थ को विभामय बनाने का साधन मानते हैं परन्तु दण्डी ने अलंकार के अन्तर्गत रस, वक्रोक्ति और रीति को भी स्थान दिया है । दण्डी ने अलंकार को काव्य का सौन्दर्य वर्धक धर्ममाना है ।

---

1. साहित्यकोश भाग-1 - पृ0 73
2. वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचलंकृतिः । - भामह काव्यालंकार - 1/37
3. काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते । - काव्यादर्श दण्डी - 2:1
4. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते
   यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना ।
   - काव्यालंकारः भामह । - 2:85

मम्मट ने व्यंग्यार्थ को काव्य में महत्वपूर्ण माना है । उन्होंने अलंकार को प्रधानता देते हुए लिखा है "जो शब्द या अर्थ कवि - प्रतिभा के बल से ग्राह्य बनता है; उसी में विचित्रता है, वही अलंकार की भूमि है । वैचित्र्य ही अलंकार है ।[1]

वामन ने दण्डी के मत का खण्डन किया है । अपने मत का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है कि काव्य में सौन्दर्य प्रदान करनेवाला धर्म तो गुण है ।[2] अलंकार केवल सौन्दर्य ही नहीं प्रदान करते, वरन् उसकी अभिवृद्धि भी करते हैं ।[3]

गुण और अलंकार का अन्तर बतलाते हुए मम्मट ने लिखा है कि गुण और अलंकार का भेद रसाश्रित है । गुण रस का नित्य - सम्बन्ध है,* अलंकार का नहीं । गुण उत्कर्ष-धर्म है, अलंकार केवल उपकारक । अलंकार का कर्म अंगवत है, अंगी से संलग्न नहीं ।[4] मम्मट के अनुसार "रचना दोष रहित और गुणयुक्त हो, तो अलंकार का अभाव होने पर भी वह काव्य है ।[5] उन्होंने गुण को प्रधान माना है और अलंकार को गौण स्थान दिया है । जयदेव अलंकार को प्रधानता देते है ।

संस्कृत के आचार्यों की तरह हिन्दी के आचार्यों ने भी अलंकारों का विवेचन किया है ।

आचार्य केशव के मत से अलंकार रहित कविता नग्न है । उच्च जाति शुभ सामुद्रिक लक्षण, सुन्दर रंग तथा प्रेमपूर्ण हृदय तथा मधुर स्वभावयुक्त वनिता भी नग्न रहने पर सुन्दर नहीं लगती है, ठीक उसी प्रकार उत्तम जाति, लक्षण, वर्ण, रस तथा छन्दवाली अलंकाररहित कविता पाठक को आकृष्ट नहीं करती ।[6]

---

1. किंच "वैचित्र्यमलंकारः "इति य एव कवि प्रतिभा संरम्भगोचरस्तत्रैव विचित्रता इति सैवाऽलंकारभूमिः ।। - काव्य प्रकाशः, मम्मट, नवम् उल्लास
2. तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारा । - काव्यालंकार सूत्र - वामन : 3/1/2
3. ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादयः इवात्मनः ।
   उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा - काव्यालंकार सूत्र, वामन - 8/66
4. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्ग द्वारेणजातुचित ।
   हारादिवलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः - काव्य प्रकाश, मम्मट, 8/67
5. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।
   काव्यप्रकाश - मम्मट 1:4
6. जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरन सरस सुवृत्त ।
   भूषण बिनु न विराजई, कविता, वनिता, मित्त - कविप्रिया केशव - 5:1

कविता में कवि की भावना का प्रमुख स्थान रहता है और भावना की अभिव्यक्ति सुन्दर एवं आकर्षक रूप में होनी अनिवार्य है । अतः कविता में अलंकारों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है । अलंकार ही रस को तीव्रता प्रदान करते हैं और उसी के प्रयोग से कविता में चारुत्व की वृद्धि होती है । परिणामतः पाठकों के विचारों में तादात्म्य स्थापित होता है ।

अलंकारों का काव्य में औचित्य बतलाते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप में हों (जैसे - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि में) चाहे काव्य-वक्रता के रूप में (जैसे अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हैं, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष-साधन के लिए ही ।[1] इनके द्वारा भावों का उत्कर्ष होता है । काव्य में अलंकारों का श्रेष्ठ स्थान है किन्तु अलंकार साध्य न होकर साधन है ।

भारतीय अलंकारशास्त्र में अलंकार दो प्रकार के बतलाये गये है - (1) शब्दालंकार, (2) अर्थालंकार । जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनों के आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करते हैं, वे उभयालंकार कहलाते है । राजा भोज ने शब्दालंकार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि शब्दों के वैचित्र्य द्वारा काव्य को अलंकृत करनेवाले अलंकारों को शब्दालंकार कहा जाता है ।[2] अर्थालंकार की परिभाषा उन्होंने इस प्रकार दी है - जो शब्द अर्थ-गाम्भीर्य को प्रगट करते हैं, उन्हें अर्थालंकार कहा जाता है।[3]

शब्दालंकार पांच प्रकार के माने जाते हैं । अर्थात् - वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष और चित्र । अर्थालंकार के भी पांच प्रकार है । अर्थात् सादृश्यवर्ग, विरोधगर्भ, शृंखलामूल, न्यायमूल और गूढ़ार्थ - प्रतीतिमूल ।

---

1. रस मीमांसा : आचार्य शुक्ल - पृ0 39
2. ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंकर्तुमिहक्षमाः शब्दालंकार संज्ञास्ते - सरस्वती कण्ठाभरण, राजा भोज ।
3. वही, अलमर्थमलंकर्तु यद्व्युत्पत्यादिवर्त्मना । - सेवा जात्यादयः प्रोक्तास्तेऽर्थालंकारसंज्ञया ।

शब्दालंकार के अन्तर्गत हम जिन अलंकारों को स्थान देते हैं उनके विषय में जानना अनिवार्य है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक "साहित्य का साथी" में अर्थालंकार का वर्गीकरण किया है । जैसे -

अर्थालंकार - 1. सादृश्यगर्भ
2. विरोधगर्भ
3. श्रृंखलामूल
4. न्यायमूल
5. गूढार्थ - प्रतीतिमूल

1) सादृश्य गर्भ अलंकार : (1) अनन्वय (2) स्मरण

क) भेदाभेद प्रधान :

1) उपमा
2) उपमेयोपमा
3) अनन्वय
4) स्मरण

ख) अभेद-प्रधान :

1) आरोपमूल
1) रूपक
2) संदेह
3) उल्लेख
4) भ्रान्तिमान्
5) अपह्नुति

2) अध्यवसायमूल :

उत्प्रेक्षा
अतिशयोक्ति

ग) गम्यौपगम्याश्रय :

1) पदार्थगत -

- दीपक
- तुल्ययोगिता

2) वाक्यार्थगतः -

- दृष्टान्त
- प्रतिवस्तूपमा
- निदर्शना

3) भेद प्रधान -

- व्यतिरेक
- सहोक्ति

4) विशेषण - विच्छित्तिमूलकः

- समासोक्ति
- परिकर

5) विशेषण - विशेष्य विच्छित्याश्रयः

- श्लेष

2) विरोधगर्भ :

- विरोधाभास
- विभावना
- विशेषोक्ति
- विषम
- अधिक
- असंगति

3) शृंखलामूल :

- कारणमाला
- एकावली
- सार

4) न्यायमूल :

- अर्थान्तरन्यास
- काव्यलिंग
- अप्रस्तुत - प्रशंसा
- अर्थापत्ति
- उदात्त
- परिवृत

5) गूढार्थ - प्रतीतिमूल :

- वक्रोक्ति
- व्याज स्तुति
- भाविक

किन्तु आधुनिक काल में कुछ गिने चुने अलंकारों का ही विशेष प्रयोग मिलता है ।

विभिन्न अलंकारों के कुशल विन्यास से कविता में भावाभिव्यक्ति सजीव बन जाती है और अभिव्यक्ति मार्मिक एवं कलात्मक। "श्रवणाख्यान" के कवि दलपतराम ने उपमा के द्वारा जो भाव व्यंजना दी है वह द्रष्टव्य है । मृत श्रवण की अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए जब राजा दशरथ घड़े में जल भर कर उसके माता-पिता के पास जाते है, तब उनकी दशा का वर्णन देखिए -

पंख विदारित पंखि ज्यौं, अंध वृद्ध अवरेखि ।
भयो शोकातुर सदय नृप, दीन तपस्वी देखि ।।[1] श्र०पृ० छंद - 83

पर कटे पक्षी से उपमा देकर कवि राजा दशरथ के मनोभाव तथा श्रवण के माता-पिता की स्थिति का बड़ा ही सटिक चित्र उपस्थित करते हैं ।

---

1. श्रवणाख्यान : संपा० डॉ० मदनगोपाल गुप्त : प्रका० म०स०वि०वि० युनि०प्रेस

उपमा अलंकार का निम्न उदाहरण देखिए :

यह अनाहत नाद-सा बजता हृदय में
यह मधुर उन्माद-सा सजता हृदय में
यह कसक बनकर कसकता है सदा,
दैव का वरदान है या आपदा ![1]

फुनगी पर बैठ गया छंद,
कलियों के द्वार हुए बंद
पछुआ के हाथों को थाम,
डोल रहा पागल मकरंद ।[2]

उपमा अलंकार के लिए कुछ और उदाहरण देखिए -

साँसों की गरमी से,
प्यासी है धरती,
रिसती है बिजली
बादल की उमस से ।[3]

यह नभ भी तो पत्रि ही है
नक्षत्र - ग्रन्थ जो लिखा
प्रभु के रहस्य सा क्या नभ
इतना ही, जितना दिखा ।[4]

शान्तिजी ने अपने काव्य संग्रह में उपमा अलंकार को बड़े ही सटिक ढंग से रखा है । जैसे -

---

1. चांद चांदनी और कैक्टस - डॉ० नागर - पृ० 16
2. अकुलाती है प्यास - डॉ० कावरा - पृ० 16
3. स्पंदन - दिव्या राजन - पृ० 41
4. शबरी - श्री नरेश मेहता - पृ० 34

इच्छाओं के घरौंदे,
महत्वाकांक्षाओं के महल,
ढह गये जब रेत-से ।[1]

साथ ही श्री नरेश मेहता ने उपमा अलंकार का बड़ा ही उत्कृष्ठ उदाहरण दिया है । जैसे -

मन्दार पुष्प सा जिसका
सर्वस्व समर्पित प्रभु को,
जो स्वयं तपस्या है अब
क्या वेद मन्त्र हैं उसको ।[2]

शान्ति सेठ ने भी उपमा अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है । जैसे -

श्याम रंग के सागर में
मन की मटकी डूबी जायें ।[3]

कविवर श्री नागरजी ने प्रकृति वर्णन के माध्यम से उपमा अलंकार कौं सुंदर प्रयोग किया है । जैसे -

विगलित होता हिमगिरि
ज्यों रवि - किरणों के
प्रखर ताप से,
पिघल रहा था
तपःपूत मुनिमन
वैसे ही अतनु ताप से ।[4]

---

1. नीलाम्बर के नीचे - डॉ० शान्ति सेठ - पृ० 38
2. शबरी - श्री नरेश मेहता - पृ० 36
3. नीलाम्बर के नीचे - डॉ० शान्ति सेठ - पृ० 41
4. पुम्नोचा - डॉ० नागर - पृ० 42

अब हम रूपक अलंकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण देखेंगे -

जैसे -धनुष क्या टूटा कि
नागिन नाभि से उठकर
फुलाए फन
सभी विश्वकू को कर ध्वस्त
पल में जा लगी ब्रम्हांड से,
तोड़ आशाएं सभी
वह पी रही अमृत
अलख के भांड से ।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण हमें नरेश मेहता के महाप्रस्थान में मिलता है । जैसे -

हिम, केवल हिम -
मृग वर्णाएँ धूम
देवकन्याओं सी हिम फिसल रही हैं,
चांदनियों की पारदर्शिका मलमल में
लावण्यमयी एकान्त द्रोणियाँ अंग चुराती ।[2]

डॉ० काबरा ने भी उत्प्रेक्षा अलंकार का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है । इसका एक उदाहरण देखिए -

बहुरूपी तारों का चोर,
रजनी का बंदी मुँहजोर
पश्चिम में डूबा फिर भी -
दीख रही कटी हुई कोर ।[3]

---

1. धनुष भंग - डॉ० किशोर काबरा - पृ० 5
2. महाप्रस्थान - श्री नरेश मेहता - पृ० 38
3. ऋतुमती है प्यास - डॉ० किशोर काबरा - पृ० 28

जहाँ एक अभिप्राय से कहे हुए वाक्य को किसी दूसरे अर्थ में लगा दिया जाए वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । वक्रोक्ति अलंकार का एक उत्कृष्ठ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है -

धरती का पुत्र हूँ
नहुष हूँ पापों का
अहं की कारा में
बन्दी हूँ तृष्णा का ।[1]

आधुनिक कवियों ने प्रत्यारोपण अलंकार का प्रयोग भी अधिक मात्रा में किया है । जैसे -

खा गई हर खुशी को उदासी
हर महक आज लगती है बासी
यह धुआँ किस चिता से उठा है
अब यहाँ और रहना क्या है ।[2]

आधुनिक कवि श्री विष्णु विराट ने अतिशयोक्ति अलंकार का उत्कृष्ठ एवं सुन्दर उदाहरण हमारे सम्मुख रखा है । देखिए -

पग धारत नूँपुर यों खनके, सुर लोक सभा अनुभास रह्यो ।
मन में उतरी बिजुरी तन की, घन कौंधत ओज उजास रह्यो ।
खनकी कटि किंकिन खननन महक्यो महक्यो मृदहास रह्यो ।
वह आई दिखाई पड़ी सबकों, फिर दीपक में न प्रकास रह्यो ।।[3]

उन्होंने वर्णानुप्रास के भी बड़े ही अच्छे उदाहरण दिये हैं । जैसे -

वा चितचोर के चाहक होत ही, चेतती चित्त चराग की लाली
कुंज गलीन खेलती-खेलती, बाँसुरी राग बिहाग की लाली ।।[4]

1. बिंदिया के बोल - डॉ0 रामकुमार गुप्त - पृ0 16
2. पिछली बहार के सूरजमुखी - अविनाश - पृ0 38
3. फैली पलाश के कानन लौं - डॉ0 विष्णु विराट
4. फैली पलाश के कानन लौं - डॉ0 विष्णु विराट

वर्णानुप्रास का एक और उदाहरण देखिए -

भोर भए भौज के सरोज ओज रोज भए,
मान पै मनोज के प्रमान भए मोहना ।
रास भए रस में सुहास वास आनन पै,
साँस साँस बाँसुरी की तान भए मोहना ।
नैननि में नैन भए, बैननि में बैन भए,
सैन भरे चित्त के बिहार भए मोहना ।
बान भए जोग के, वियोग के निदान भए,
राधिका के प्रानन में प्रान भए मोहना ।।[1]

अनुप्रास में स्वरों के भिन्न रहते हुए भी सदृश वर्णों का कई बार प्रयोग होता है । कहीं व्यंजन आपस में बार-बार मिल जाते हैं, कहीं व्यंजनों का एक प्रकार से एक बार साम्य अथवा अनेक प्रकार से कई बार साम्य होता है । पद के अंत में आने वाले सस्वर व्यंजनों का साम्य भी अनुप्रास के ही अंतर्गत माना जाता है । अनुप्रास अलंकार के कुछ उदाहरण देखिए -

मेह बरसत घहरात घन नभ माँहि
दामिनि दमकि चका चौंध करि जात है ।
तरे नौ धरती अंगार भानु उगलत
फिर भी न गात विप्लव गरकात हैं ।[2]

अनुप्रास का एक और उदाहरण देखिए :

मेढ़क टरटर, झिंगुर झनझन, टिमटिम जुगनूं, गुपचुप तारे ।
सर-सर-सर सारस की जोड़ी, उड़ी जा रही पंख पसारे ।।[3]

---

1. पैली पलाश के कानन लौं - डॉ0 विष्णु विराट
2. फागुन बीते जा रहे, सूर्यदीन यादव - पृ0 20
3. नरो वा कुंजरो वा - डॉ0 किशोर काबरा - पृ0 58

जहाँ एक शब्द अनेक बार आये और साथ ही भिन्न भिन्न अर्थ भी दे, वहाँ यमक अलंकार होता है । आधुनिक काव्यों में हमें यमक का प्रायः कम ही प्रयोग नज़र आता है । यहाँ यमक अलंकार का एक श्रेष्ठ उदाहरण देखिए -

दीखत नैननि सी ये कटार, कटार से नैन लहू में भरे से ।
बाँकी कमान हैं भौंह सरोनन, भौंह कमान पै बान अरे - से ।
दंत सी दीपै जवाहर जोत, सो दंत जवाहर जोत जरे - से ।
देह सो कंचन दीपै झलामल, देह सो कंचन के गगरे - से ।।[1]

जहाँ एक शब्द अनेक अर्थ दे, वहाँ श्लेष अलंकार होता है । चित्रालंकार में शब्दों के निबंधन से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाए जाते हैं । केवल शब्दों के किसी वांछित क्रम से बैठाना ही इस अलंकार का मुख्य कर्म है । इसमें एक प्रकार का मानसिक कौशल दिखाना पड़ता है ।

भाषा

प्रत्येक कवि को अपने अनुभूत सत्य की अभिव्यंजना में सर्वप्रथम भाषा की आवश्यकता महसूस होती है । भाषा अभिव्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम है । इसी के द्वारा मनुष्य अपने सुख-दुःख, राग-विराग, आदि को सहज ढंग से अभिव्यक्त करता है । भाषा चूंकि एक सामाजिक यथार्थ है । समय के साथ उसमें बदलाव की स्थिति आना स्वाभाविक बात है ।

प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार भाषा से संघर्ष और असन्तोष का अनुभव गहरे स्तरों पर करता है । यह संघर्ष और असन्तोष वस्तुतः उसका अपने आप से है, क्योंकि भाषा उसके सम्पृक्त व्यक्तित्व का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है । अस्पष्ट संवेदना

---

1. फैली पलाश के कानन सों - डॉ० विष्णु विराट -

के रूप में प्रतिभासित अनुभव को हम वास्तविक रूप में अपना भाषा के माध्यम से ही बना पाते हैं ।"[1] तात्पर्य यही है कि पारस्परिक भाषा की असमर्थता को देखते हुए कवि को भाषा का अपने अनुरूप संस्कार करना पड़ता है । "प्रत्येक शब्द ~~भाषा~~ का प्रत्येक समर्थ उपभोक्ता उसे एक नया संस्कार देता है । इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है, यही उसका कल्प है ।"[2] अतः कविता में अच्छी भाषा की पहचान अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग या नये-नये शब्दों का गढ़ना न होकर शब्दों का सही और संगत प्रयोग होता है ।" जब शब्दों का चयन और नियोजन इस प्रकार किया जाये कि वह सौन्दर्य तत्वात्मक कल्पना को जागृत करे या जागृत करने की चेष्टा करें तो इस चयन केके परिणाम को काव्यात्मक शब्द समूह कहा जायगा ।"[3] काव्य भाषा की यही पहचान है ।

छायावादी समीक्षकों तथा कवियों ने कविता भाषा पर नये सिरे से विचार किया । द्विवेदी युग की शुष्क इतिवृत्तात्मक भाषा के स्थान पर कोमल एवं सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने वाली काव्य भाषा का निर्माण हुआ । वस्तुतः खड़ी बोली काव्य भाषा का रचनात्मक छायावादी युग से ही प्रारम्भ होता है । पंतजी का कहना है कि - "छायावादी काव्य ने ही खड़ी बोली का परिमार्जन कर उसे माधुर्य ओज तथा अभिव्यंजना की क्षमता प्रदान की ।" यही भाषा आधुनिक कवियों के काव्य की भाषा बनने का संकल्प लिए हुए है जिसमें नये हाथों का प्रयत्न, जीवित सांसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं के अंकुर, वर्तमान के पदचिन्ह, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा अर्थात् नवीन युग की नवीन सृष्टि का समावेश है । उसमें नए कटाक्ष, नए रोमांच , नए स्वप्न, नया हास्य, नया रुदन, नया हत्कंपन, नवीन वसंत, नवीन कोकिलाओं का गान ।"[4]

---

1. भाषा और संवेदना - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ0 1
2. तारसप्तक - अज्ञेय - पृ0 14
3. भाषा और संवेदना - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ0 12 पर उद्धृत
4. पल्लव [भूमिका] - सुमित्रानंदन पंत - पृ0 10

"काव्य के काव्यानुभव को जीवित रखने के लिए अनेक भावावेगों का अन्त कवि को सहना पड़ता है । इस समस्त आवेग - संयमन या भावात्मक चयन में कवि को सबसे बड़ा बल शब्दों के रूप और गति को पहचान कर सधी क्षमता और दो टूक सफाई के साथ उनके प्रयोग का होता है । लोक यथार्थ की सोंधी, सरस, सुरीली धरती और उसके भीतर अपार- अबाध सर्जना शक्ति से मचलते हुए शब्दों और जनबोलों का चयन उसे अर्थ की दोहरी क्षति देता है ।"[1]

उपर्युक्त आकलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि युगानुरूप हिन्दी कविता की भाषा भी अपना स्वरूप स्वाभाविक गति से बदलती चली जाती है । छायावादी कविता ने हिन्दी कविता को जो वातावरण प्रदान किया उसी के अनुरूप उसकी काव्य भाषा सूक्ष्म - अभिव्यंजना सम्पन्न हो गयी ।

छायावादोत्तर काल के कवियों ने अतिशय का त्याग कर दिया और उन्होंने छायावादी प्रयोग में से भाषा के निमित्त इतनी ही कोमलता स्वीकार की जितनी भाषा का सौन्दर्य, उसकी शक्ति को घटाये बिना संवारा जा सकता था ।

नए कवियों ने अपनी सरल भाषा, स्पष्ट शैली और यथार्थ ग्राहकता के द्वारा हिन्दी काव्य परम्परा को और आगे तक विकसित किया । नयी कविता की भाषा छायावाद की सजी-धजी, प्रगतिवाद की उधड़ी और प्रयोगवाद की नजाकतपूर्ण काव्य-भाषा से पृथक थी । वास्तव में भाषा संवेदना की नियमित और अनुशासनपूर्ण कार्यवाही है । नयी कविता की भाषा का क्षेत्र विस्तृत है, जिसमें परिवेशगत यथार्थ की टीस एवं कटुता भरी हुई है । इसमें आधुनिक कवियों की भाषा में निर्भिकता एवं पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश, वर्गीय अन्तर्संघर्ष, दलित वर्ग के प्रति आस्था, यौन प्रतीक और सौन्दर्यबोध की सूक्ष्मता पूर्णतः भरी हुई है । नये कवियों के शब्द-प्रयोग जनवादी

---

1. अभिनव सोपान - बच्चन [भूमिका पन्त] - पृ0 32

मूल्यों के अन्वेषण के लिए तेज-तर्रार हथियार के सदृश प्रतीत होते हैं । उन्होंने व्यंग्यात्मक शब्दावलियों का भी प्रयोग किया है ।

हमें तीन प्रकार के शब्द आधुनिक काव्य में दृष्टव्य है -

§1§ संस्कृतनिष्ठ शब्द §2§ लोकभाषा के शब्द

§3§ अंग्रेजी के शब्द

आधुनिक काव्य में संस्कृतनिष्ठ भाषा का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । काव्य भाषा के इस अभिजात रूप से काव्य सौष्ठव का सम्यक् निर्वाह हुआ है । जनभाषा के प्रयोग से काव्य लोक-जीवन की ओर उन्मुख हुआ है । आज के काव्य में निम्नवर्गीय जीवन के शब्दों के प्रयोग की एक विशेष प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ने लगी है । कुछ अंग्रेजी शब्द स्वाभाविक ढंग से आ गए हैं । अतः भावों से इनका ताल-मेल बैठ गया है, यही कारण है कि ये विदेशी शब्द होते हुए भी खटकते नहीं है ।

गुजरात के आधुनिक काव्य में भाषा के विविध रूप हमारे सन्मुख विद्यमान है । कहीं हमें संस्कृतनिष्ठ भाषा मिलती है तो कहीं हमें सरल भाषा के दर्शन होते है । कहीं अंग्रेजी एवं अरबी फारसी के शब्दों का भी चयन मिलता है तो कहीं हमें प्राचीन पारम्परिक व्रज खड़ी एवं अवधी के भी दर्शन होते है । यहाँ भाषा वैविध्य आधुनिक काल में भी विद्यमान है उसके लिए कुछ उदाहरण देखिए । यहाँ सरल एवं सुंदर खड़ी बोली देखिए -

प्रत्येक राज्याकांक्षी वृधक्ष ही होता है
जिसकी गोद में कटी हुई मानवता
जयद्रथ का रक्तरंजित सिर होती है ।[1]

संस्कृतनिष्ठ भाषा हमें जयसिंह "व्यथित" में मिलती है -

द्वन्द युद्ध चल रहा भयंकर, दावानल है धधक रहा ।
हृदय सभी के हुए प्रदूषित, जन-मानस है झुलस रहा ।[2]

तो कहीं व्रजभाषा का प्रयोग हमें मिलता है -

---

1. महाप्रस्थान : श्री नरेश महेता - पृ0 141
2. आर्तनाद : जयसिंह "व्यथित"- पृ0 38

पुनि पुनि गुरु अनुग्रह कीन्हौं, मन भावन मन पावन कीन्हौं ।
केहि विधि बन्दौं तब पद पावन, आरत मन को दुःख हर लीन्हौं ।
कोटि कोटि वन्दन स्वीकारो, लख चौरासी तुम पर वारों ।।[1]

कहीं इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग प्रतीत होता है । जैसे एक हाइकु देखिए -

दफा के वादें, कभी खफा हुए भी
फूलों से पूछो ।[2]

दूसरा उदाहरण गज़ल के कुछ शेर है -

आज अपनी ही गली में आदमी अनजान है
भीड़ का होकर अकेला खो गई पहचान है ।
मृत्यु की आगोश में बैठा हुआ आशा लिए
प्यास पी पी कर मरा परवश यहाँ इन्सान है ।[3]

प्रस्तुत गज़ल में "मृत्यु" संस्कृत शब्द है । उसके साथ "आगोश" अरबी-फारसी का शब्द रखा गया है । इसमें आधुनिक काव्य में कई प्रकार की विविधता मिलती है । जैसे अँग्रेजी शब्दों का हिन्दी में प्रयोग देखिए -

बाते करतीं
हरियाले लान पै
पड़ी कुर्सियाँ ।[4]

यहाँ "लान" शब्द अँग्रेजी है । ठीक वैसे ही और एक हाइकु देखिए -

---

1. निलाम्बर के नीचे : डॉ० शांति सेठ : पृ० 9
2. शाश्वत क्षितिज : डॉ० अग्रवाल : पृ० 33
3. रोशनी की तलाश : डॉ० दयानन्द जैनः पृ० 15
4. शाश्वत क्षितिज : डॉ० अग्रवाल : पृ० 11

ढूंढती किसे
बरसाने की राधा
नाच क्लबों में ।[1]

यहाँ "क्लब" शब्द अंग्रेजी भाषा का है । इस प्रकार भाषा के विविध पहलू हमें गुजरात के आधुनिक हिन्दी काव्य के अन्तर्गत मिलते हैं ।

छंद

छंद अक्षर प्रधान होता है । उसका आधार स्वराघात आदि है । छन्द कविता का रहस्य है । यह तो कविता का नियामक एवं अधिकृत गणितीय फार्मूला है । यह कविता का स्वाभाविक एवं आवश्यक पहलू है, जिससे कविता में आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों दृष्टियों से अनुशासन उतना पाता है ।

नयी कविता मात्र अनुभूति को पहचानने की चेष्टा करती है । यह अनुभूति ही उसकी पूंजी है । इस अनुभूति की पकड़ को अभिव्यक्त करने में कविता छन्दों को घूस देकर पाठक का मनोरंजन करना अपना लक्ष्य नहीं समझती । नये कवियों ने यथार्थानुभूति सम्प्रेषण के लिए काव्येतर मूल्यों संगीत एवं छन्द को नकारा तथा स्वच्छन्द चेतना को स्थापित करने के लिए मुक्त छन्द को स्वीकार किया ।

नयी कविता में लोक गीतों से प्रभावित छन्दों का भी बड़ा प्रभावकारी स्वरूप देखने को मिलता है । नये जनवादी कवियों ने लोकधुन एवं तुकपरक कविताओं के माध्यम से लोक एवं ग्राम्य जीवन के यथार्थमूलक अनुभव को लोकगीत के छन्दों में व्यक्त किया है । ऐसे छन्दों के मूल में मानव-मन को झकझोर देनेवाली मोहक ध्वनियों

---

1. शाश्वत क्षितिज : डॉ० अग्रवाल : पृ० 14

की भूमिका विद्यमान रहती है । लोकभाषा से अनुशासित नयी कविता में कृषक-जीवन की यथार्थता को चित्रित किया गया है । ग्राम्य गीतों के लय - तुक, टेके, तर्ज एवं धुन को नये कवियों ने भली-भांति ग्रहण किया है ।

नयी कविता की छन्द-योजना में क्रमशः युग एवं परिवेश की कटुता असन्तोष एवं विसंगतियों के आधिक्य के कारण हो टूटने एवं परिवर्तित होने की दिशा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है । नयी कविता के छान्दसिक तथ्यों का अभिधान मूल्यान्वेषण का ही सिलसिला है । नयी कविता का छन्द - विधान आधुनिक जीवन बोध से सर्वथा सम्पृक्त है ।

आधुनिक कवियों के विचार से "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है ।"[1]

नयी कविता में मुक्त छंद या स्वच्छंद छंद को अपनाया गया है जिसमें चरण अनियमित, गति असमान और यति-विधान भावानुकूल हैं । मुक्त छन्द की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है -

(1) चरणों की अनियमितता

(2) असमान स्वच्छंद गति

(3) भावों के अनुसार यति

(4) प्रवाह की अखंडता

(5) लघु - गुरु और वर्ण - संख्या बिना किसी तरह क्रम व समानता के साथ

(6) मुक्त छंद - विधान - नियम साहित्य

(7) बाह्य एकता के स्थान पर आंतरिक एकता । नई कविता में जो छंद प्रयुक्त हो रहा है, वह लय छंद है । लय भी तीन प्रकार के हैं -

1) शब्द - लय, 2) अर्थ - लय, 3) भाव - लय

---

1. परिमल (भूमिका) - निराला

"अर्थ – लय का निरूपण प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में नहीं मिलता । हिन्दी में नई कविता के नाम से अभिहित होने वाली आधुनिक काव्यधारा के अंतर्गत अनेक बाह्यतः गद्याभास कविताओं का आंतरिक आधार खोजने पर अर्थ – लय का स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जिससे इस तत्व की ओर विशेष ध्यान गया है – – आवर्तन – विवर्तन और गहराई से युक्त गतिशीलता एक सम्बन्ध – प्रवाह रूप में प्रतिभासित होती है । शब्द और अर्थ दोनों में लय – रूप में व्याप्त हो जाती है । अर्थ – लय का यही तात्त्विक आधार है ।"[1]

लोक गीतों की लयों के आधार पर भी छंदों की रचना हुई है । इन कविताओं का धरातल लोक – जीवन को स्पर्श करता हुआ उसका अत्यन्त भावपूर्ण पक्ष प्रस्तुत करता है । आधुनिक कविता में के कवियों ने लोक गीतों से भी प्रेरणा प्राप्त कर, उनको अपने गीतों की लयों के विधान में अंगीकार किया है । लोक गीतों की लय सहज होती है । उसमें एकमुक्तता और गुंजाइश रहती है । नियमों की जकड़न वह रूढ़ि से दूर होती है ।

पिंगल परम्परा के मर्मज्ञ कुछ आधुनिक कवियों ने विविध छंदों का रूष्ठ प्रयोग किया है । दलपतराम ने श्रवणाख्यान में कवित्त भूमिका, सवैया सोरठा दोहा चौपाई चरनाकुल भुजंग प्रयात, मालिनी, हरिगीतिका आदि विविध छंदों का व्यवहार किया है । हरिगीतिका छंद द्वारा पिता के पुत्रशोक की जो करुण व्यंजना अष्टम प्रभाव के अंतर्गत द्वितीय से लेकर छठे छंद तक है वह द्रष्टव्य है –

फिस गयो किधौं क्रोधित भयो क्यों कछु न उतर कहत है
इकबेद बालम बोल हमसें सुनना हम चित चहत है ।
हम पंगु अंध अशक्त कों, सुत सदय दृश से देख हूँ ।
हम तृषित क्षुधित से क्षोभयुत आधार बिन अवदेख हूँ ।।2।।[2]

---

1. हिन्दी – साहित्य कोश – ज्ञानमंडल लि. बनारस – सं0 धीरेन्द्र वर्मा प्रथम संस्करण 2015 – पृ0 56
2. श्रवणाख्या – पृ0 107

सोरठा छंद में माता के शोक की जो व्यंजना की गई है वह भी अवर्णनीय है -

होवहि हम तनुपात, तो बिन तरफी तरफी के ।
तबे हमारी लाह, कौन कर हि उत्तर क्रिया ।।18।।
नाबहु न रहतो दूर, लोह ज्युंहि हे चुमको
उर क्यों करि है चूँहि सहनता ।।19।।[1]

सुपना सम संसार, कहत पुनि बहु कष्ट मय ।
मो अनुभव यहवार, जान्यो सार यथार्थ ज्यों ।।20।।
निर्दय दैव कहाय, प्रथम कहा सुख देय करें ।
छिनमें नेत छुड़ाय, बिलखत प्रानी बापुरे ।।21।।

कवि दलपतराम की काव्य प्रकृति मूलतः व्रजभाषा की है तिस पर वे अलंकार एवं पिंगलके के विशेष प्रेमी होने के कारण उनकी छंद योजना वैविध्यपूर्ण एवं शास्त्रपूत है । "प्रियप्रवास" महाकाव्य के रचयिता हरिऔधजी उपाध्याय ने विविध -वृत्तों का सुष्ठु विन्यास कर सारा महाकाव्य छन्दोबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है वैसे कवि दलपतराम ने भी श्रवणाख्यान में किया है । शार्दूल विक्रीड़त एवं वसंततिलका के एक एक भाव व्यंजक उदाहरण देखिए :-

राजश्रीवर्णन
शार्दूल विक्रीड़ित
वाजी मंजु मतंग पुंज समना मंत्री सयाने सबै ।
भारे केश सुवर्ण भूरि, मुक्ता पन्नादि हीरा पावै ।
राजे राजा समाज काज करता नीतोपकारी सदे ।
हार्‌यो हेरि अनेक एक उपमा पायो न पायो हदे ।।23।।

---

1. श्रवणाख्यान - पृ0 108

सहिरता वर्णन

वसंततिलका छन्द

सेवार केस सम आनन "कज" जातो ।

राजे उराज चक पानिप पानि सो है

तारंगिनी तरुन सी तज स्यों जिमो है ।।27।।

उपर्युक्त विभिन्न उदाहरणों में करुणा, प्रसन्नता आदि भावों की धारा छन्द ध्वनि के साथ एकाकार होकर जो आगे बढ़ती है जाती है उसे बौद्धिकता कहीं भी अवरुद्ध नहीं करती ।

आधुनिक गुजराती काव्य साहित्य में भी छन्दोबद्धता का आग्रह अनेक कवियों में रहा है और 1920 में गांधीजी के यहाँ सक्रिय राजकारण में प्रवेश के पूर्व और कुछ पश्चात् तक न्हानालाल, कांत आदि कवि वैविध्य-पूर्ण छन्दों के सफल प्रयोक्ता रहे हैं । मध्यकालीन एवं उसकी परम्परा के प्रबंधात्मक कृतियों में कथावस्तु को अक्षुण्ण बनाये रख कर उसमें कथा रस का भी निर्वाह किए रहने के कारण जो छंद प्रयोग हुए वह तो बड़ी कृतियों की एक अनिवार्यता है किन्तु छोटे छोटे गीतों में भी छंदों का प्रयोग करना जो आज तक बना रहा है वह एक महत्त्वपूर्ण बात है । 1981 में रचना करनेवाले हसित बुच ने अपनी कविता में पृथ्वी परंपरित मनहर, चोपाई, अनुष्टुप, झूलणा, शालिनी, गुलबंकी आदि के सफल प्रयोग किए हैं । क्यों विलंब ? कविता में शालिनी का प्रयोग देखिए –

मेरी तेरी प्रीत में आदि से ही

कोई मेरी गुप्त है बात ना, न

मेरे कोई भग्न वा तुप्त स्वप्न

ऐसा है, जो गुप्त सम्मुख तेरे ।

कैसा है सौभाग्य मेरा अपार ।

मेरा है धन्यत्व यह, जो अनंत

प्रेमियों की आरजू, जो सदैव

आयुर्यात्रा की सुधा – है सुगंध ।

"मैं" नामक रचना में गुलबंदी की छटा दृष्टव्य है -

(1) मैं न बद्ध, मैं न मुक्त,
केन्द्र से निकट न हूँ, न दूर
कहाँ यहाँ ? न जानूँ
जानूँ, यह को अदृष्ट से ही युक्त ।

गुरुलघु या लघु-गुरु की परम्परा पर आधारित प्रस्तुत मात्रिक लय रचना की कुछ और पंक्तियाँ देखिए :-

(2) न एक मैं,
यहाँ अनेक :-
क्यों अरे, मुझे ही क्यों न चैन
विरक्त सूर्य, क्यों विरक्त रैन ।
पुष्प का पराग हूँ ?
स्वयं विनष्ट आग हूँ ?
अनेक चक्रन्यस्त ?
मैं ही एक ?

परंपरित "चौपाई" का नूतन विन्यास "भूल" नामक रचना में देखिए :-

रहे मग में
हम दो भूल ।
किसकी भूल ?
किसकी भूल ?
खिड़की कैसे
रह गई खुल ?
तेरी भूल ?
मेरी भूल ?
ठीक हुआ, कि
बत्ती गुल ।
मेरी भूल ?
तेरी भूल ?

MEHTA LIBRARY
251
M. S. University of Baroda

रहे झूमते
हम दो फूल ।
मेरी भूल ?
तेरी भूल ?

रस अखूट है,
हम दो, मूल ।
तेरी भूल ?
मेरी भूल ?

दुनिया है वहीं
कायम शूल -
किसकी भूल ?
किसकी भूल ?[1]

"पतील" की चौपाई का नमूना देखिए -

अयि मानवति, परम उदारा
मो पे तोर अगन उपकारा,
शील वेश स्वरूप रमणीया
तोर नियोगनि अनुसरणीयार ।[2]

"नयी तर्जे" के रचयिता पतील ने अश्रुओं का उत्सव में, शिखरिणी अधिकार दिल की चाहना में हरिगीत, बुरानपुर में वसंततिलका व्याहता में पुष्पिताग्रा, गृह में मम आह वसंत वसीयेंतोरक, आमयजाल तथा बतियुंमीठी में द्रुतविलंबित आदि छंदों का जो विन्यास किया है वह चाहे शास्त्रपूत न हो किन्तु कवि के हृदगत एवं मनोगत को व्यक्त करने में सफल है ।

इस प्रकार शिल्प विधान के प्रायः सभी उपकरणों के श्रेष्ठ विन्यास से गुजरात का आधुनिक हिन्दी काव्य अत्यन्त उर्वर है । इतना ही नहीं कुछ नई भंगिमाओं के प्रदान के कारण आधुनिक हिन्दी काव्य इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है ।

---

1. ईषत् - पृ0 29
2. नयी तर्जे - पृ0 63